ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क—40.00
एक प्रति—12.50
आजीवन सदस्यता शुल्क
800.00

विषय-सूची

कविता	लेखक	पृष्ठ
चलना है दूर मुसाफिर क्यों सोवै रे	सद्गुरु कबीर	1
अब भी चेत, तू चेतन हारा	राधाकृष्ण कुशवाहा	12
मन	डॉ. अमृत सिंह	24
संस्कार	श्री कामदेव सिंह	24
संत कबीर	श्री लखन प्रतापगढ़ी	33

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 — व्यवहार वीथी / 13 — बीजक चिंतन / 21
शंका समाधान / 29 — परमार्थ पथ / 39 — आदर्श जीवन / 48

लेख

हिन्दू कहौं तो मैं नहीं	श्री धर्मदास	6
संत वाणी	संकलित	16
नारी क्यों बेचारी?	साध्वी सुमेधा	17
अहंकार न करें	जगन्नाथ दास	25
लाओत्जे क्या कहते हैं?		31
सद्गुरु का महत्त्व		41

कहानी

मकान	श्री भावसिंह हिरवानी	34

निवेदन

1. पारख प्रकाश के सभी ग्राहकों से निवेदन है कि वे अपने ग्राहक नं. के साथ अपना मोबाइल नं. अवश्य दर्ज करवा दें जिससे शुल्क प्राप्ति, शुल्क समाप्ति तथा पत्रिका भेजने की सूचना आपको आपके मोबाइल नं. पर भेजी जा सके।

2. विभिन्न प्रदेशों में अनेक नये जिले बन जाने के कारण कई ग्राहकों को समय पर पारख प्रकाश नहीं मिल पा रहा है। जिन ग्राहकों के जिले बदल गये हैं वे अपने ग्राहक नं. के साथ नये जिले का नाम पिन कोड सहित अवश्य सूचित करें, ताकि आपके पते पर आपके नये जिले का नाम दर्ज किया जा सके, जिससे आपको समय पर पारख प्रकाश मिलने में सुविधा हो।

वर्ष 44 **जनवरी-फरवरी-मार्च** **अंक 3**

2015

कबीर संस्थान प्रकाशन

सद्‌गुरु श्री कबीर साहेब कृत
बीजक मूल (छोटा)
बीजक मूल (बड़ा)
कबीर भजनावली (भाग-1)
कबीर भजनावली (भाग-2)
कबीर साखी

~~*श्री निर्भय साहेब कृत*~~
न्यायनामा

सद्‌गुरु श्री रामसूरत साहेब कृत
विवेक प्रकाश मूल
बोधसार मूल
रहनि प्रबोधिनी मूल

श्री निर्बंध साहेब कृत
भजन प्रवेशिका

सद्‌गुरु श्री विशाल साहेब कृत
विशाल वचनामृत

सद्‌गुरु श्री अभिलाष साहेब कृत
बीजक टीका (अजिल्द)
बीजक व्याख्या : प्रथम खण्ड
बीजक व्याख्या : द्वितीय खण्ड
बीजक प्रवचन
कबीर बीजक शिक्षा
संत कबीर और उनके उपदेश
कहत कबीर
कबीर दर्शन
कबीर : जीवन और दर्शन
कबीर का सच्चा रास्ता
कबीर की उलटवांसियां
कबीर अमृतवाणी सटीक
कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व
कबीर पर शुक्ल और मेरी दृष्टि
कबीर कौन?
कबीर सन्देश
कबीर का प्रेम
कबीर साहेब
कबीर का पारख सिद्धांत
कबीर परिचय सटीक
पंचग्रंथी सटीक
विवेक प्रकाश सटीक
बोधसार सटीक
रहनि प्रबोधिनी सटीक
गुरुपारख बोध सटीक
मुक्तिद्वार सटीक
रामायण रहस्य
वेद क्या कहते हैं?
बुद्ध क्या कहते हैं ? (भाष्य)
मानसमणि
तुलसी पंचामृत
उपनिषद् सौरभ
योगदर्शन
गीतासार
वैदिक राष्ट्रीयता
श्री कृष्ण और गीता
मोक्ष शास्त्र
कल्याणपथ
ब्रह्मचर्य जीवन
बूंद बूंद अमृत
सब सुख तेरे पास
बसै आनंद अटारी
छाड़हु मन विस्तारा
घूंघट के पट खोल
हंसा सुधि करु अपनो देश
उड़ि चलो हंसा अमरलोक को
समुद्र समाना बुंद में
मेरी और ह्वेन सां की डायरी
बंदे करि ले आप निबेरा
शाश्वत जीवन
सहज समाधि
ज्ञान चौंतीसा
सपने सोया मानवा
ढाई आखर
धर्म को डुबाने वाला कौन?
समझे की गति एक है
धर्म और मजहब
जीवन का सच्चा आनंद
प्रश्नोत्तरी
पत्रावली
संसार के महापुरुष
फुले और पेरियार
व्यवहार की कला
स्त्री बाल शिक्षा
आप किधर जा रहे हैं?
स्वर्ग और मोक्ष
ऐसी करनी कर चलो
ये भ्रम भूत सकल जग खाया
सरल शिक्षा
जगन्मीमांसा
बुद्धि विनोद
हृदय के गीत
वैराग्य संजीवनी
भजनावली
आदेश प्रभा
राम से कबीर
अनंत की ओर
कबीरपंथी जीवनचर्या
अहिंसा शुद्धाहार
हितोपदेश समाधान
मैं कौन हूं?
ब्राह्मण कौन?
नास्तिक कौन?
श्री कृष्ण कौन?
संत कौन?
हिन्दू कौन?
जीवन क्या है?
ध्यान क्या है?
योग क्या है?
पारख समाधि क्या है?
ईश्वर क्या है?
अद्वैत क्या है?
जागत नींद न कीजै
सरल बोध
श्री राम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक
सत्यनिष्ठा (सटीक)
कबीर अमृत वाणी (बड़ी)
बुद्ध क्या कहते हैं? (सटीक)
गृहस्थ धर्म
कबीर खड़ा बजार में
सत्य की खोज
स्वभाव का सुधार
भूला लोग कहैं घर मेरा
ऊंची घाटी राम की
शंकराचार्य क्या कहते हैं?
न्यायनामा (सटीक)
भवयान (सटीक)
विष्णु और वैष्णव कौन?
निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर
लाओत्ज़े क्या कहते हैं?
राम नाम भजु लागू तीर
आत्मसंयम ही राम भजन है
आत्मधन की परख
वैराग्य त्रिवेणी
अष्टावक्र गीता
सुख सागर भीतर है
मन की पीड़ा से मुक्ति
अमृत कहाँ है?
तेरा साहेब है घट भीतर
महाभारत मीमांसा
धनी धर्म साहेब के अमृत उपदेश

मराठी अनुवाद
बीजक टीका

ENGLISH TRANSLATION
Kabir Bijak (Commentary)
Eternal Life
Art of Human Behaviour
Who am I?
What is Life?
Kabir Amritvani
The Bijak of Kabir (In Verses)
Kabir Bijak
(Elucidation Sakhi Chapter)
Saint Kabir and his Teachings
Life and Philosophy of Kabir

गुजराती अनुवाद
बीजक मूल
बीजक व्याख्या : भाग-1
बीजक व्याख्या : भाग-2
कबीर अमृतवाणी
अढ़ी अक्षर प्रेम ना
व्यवहार नी कला
गुरु पारख बोध
स्त्री बाल शिक्षा
शाश्वत जीवन
ध्यान शुं छे?
हूं कोण छूं?
धर्म ने डुबारनार कोण?
जीवन शुं छे?
ईश्वर शुं छे?
कबीर सन्देश
श्री कृष्ण अने गीता
कबीर नो सांचो प्रेम
गुरुवंदना
संत कबीर अने अेमना उपदेश
कबीर : जीवन अने दर्शन

संत श्री धर्मेन्द्र साहेब कृत
कबीर के ज्वलंत रूप
सार सार को गहि रहे
सद्‌गुरु कबीर और पारख सिद्धांत
पूजिय विप्र शील गुण हीना
सबकी मांगे खैर
सुखी जीवन की कला
बूंद बूंद से घट भरे
सांचा शब्द कबीर का
सुखी जीवन का रहस्य
कबीर बीजक के रत्न

गुजराती अनुवाद
सुखी जीवन नी कला
सद्‌गुरु कबीर अने पारख सिद्धांत

संत श्री अशोक साहेब कृत
पानी में मीन पियासी
धनी कौन?
बोध कथाएं
ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया

श्री भावसिंह हिरवानी कृत
कबीर (नाटक)
प्रेरक कहानियां
काया कल्प
समर्पण
बाल कहानियां
ना घर तेरा ना घर मेरा
जीवन का सच

कबीर पारख संस्थान, संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-211011

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

पारख प्रकाश

आतम अनुभव जब भयो, तब नहिं हर्ष विषाद।
चित्र दीप सम होय रहे, तज कर वाद विवाद॥ कबीर साखी॥

वर्ष 44] इलाहाबाद, माघ, वि० सं० 2071, जनवरी 2015, सत्कबीराब्द 616 [अंक 3

चलना है दूर मुसाफिर क्यों सोवै रे॥ टेक॥

चेत अचेत नर सोच बावरे, बहुत नींद मत सोवै रे।
काम क्रोध मद लोभ में फँस के, उमरिया काहे खोवै रे॥ 1॥

सिर पर माया मोह की गठरी, संग दूत तेरे होवै रे।
सो गठरी तेरी बीच में छिन गई, मूड़ पकरि कहा रोवै रे॥ 2 ॥

रास्ता तो वह पूर विकट है, चलब अकेला होवै रे।
संग साथ तेरे कोई न चलेगा, काकी डगरिया जोवै रे॥ 3॥

नदिया गहरी नाव पुरानी, केहि विधि पार तू होवै रे।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, ब्याज धोखे मूल मत खोवै रे॥ 4॥

पारख प्रकाश

सत्य ही ईश्वर है

सत्य की प्रशंसा में वाल्मीकीय रामायण में कहा गया है—संसार में सत्य ही ईश्वर है। धर्म सदैव सत्य पर ही टिका रहता है। सबका मूल आधार सत्य ही है। सत्य के अलावा कहीं कोई परमपद नहीं है। दान, यज्ञ, होम, तपस्या, वेद सब सत्य पर ही ठहरे हैं। इसलिए सबको सत्यपरायण होना चाहिए।[1] सद्गुरु कबीर कहते हैं—यदि हृदय में सचाई-सत्य की प्रतिष्ठा हो तो दुनिया में सत्य से बढ़कर कुछ नहीं है, सत्य ही सर्वोत्तम है। कोई चाहे करोड़ों उपाय क्यों न कर ले सत्य के बिना उसे सुख नहीं मिल सकता। सत्य के समान कोई तप नहीं है और झूठ के समान कोई पाप नहीं है। जिसके हृदय में सत्य की प्रतिष्ठा है उसके हृदय में अपने आप की, चेतन स्वरूप की स्थिति है।[2] गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं—वेद, शास्त्र, पुराणों में यह वर्णन किया गया है कि सत्य के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है।[3]

दुनिया के सभी मत-पंथ-संप्रदाय में तथा सभी धर्मशास्त्रों में सत्य की विशेषता एवं महिमा का वर्णन किया गया है और कहा गया है कि मनुष्य को सच्चा सुख सत्य के मार्ग पर चलकर ही मिल सकता है और सत्य से ही उसका कल्याण हो सकता है। जब सत्य की इतनी महिमा है तो सत्य क्या है? जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा कैसे होगी?

सत्य वह है जो एकरस, शाश्वत हो, कभी बदलता न हो, जिसकी सत्ता सब समय रहती हो। इसमें भी एक प्राकृतिक सत्य है और एक पारमार्थिक। प्राकृतिक सत्य वह है जो प्रकृति के नियमानुकूल हो। जैसे—सूर्य पूर्व में उगता है, यह कथन भूत, वर्तमान, भविष्य काल में एक जैसा ही सत्य है। यह नहीं कहा जा सकता कि सूर्य पूर्व में उगता था या सूर्य पूर्व में उगेगा। जब कहा जायेगा तब यही कहा जायेगा कि सूर्य पूर्व में उगता है। परंतु यह कथन सत्य होते हुए भी इसे न तो तप की संज्ञा दी जा सकती है और न धर्म की। क्योंकि इससे मनुष्य के सुख-दुख, पाप-पुण्य से कोई मतलब नहीं है। सुख-दुख, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य का संबंध व्यावहारिक सत्य से है।

सत्य तो सत्य है, परन्तु इसको हम तीन भेदों द्वारा स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं। वे भेद हैं—आभासिक, व्यावहारिक एवं पारमार्थिक। जो सत्य न होते हुए भी सत्य जैसा प्रतीत होता है उसे आभासिक सत्य कहते हैं। जैसे गरमी के दिनों में धूप की लहरियों में पानी दिखाई देना। पानी न होते हुए भी वहां प्यासे हिरन को पानी दिखाई देता है और उस पानी से अपनी प्यास बुझाने के लिए प्यासा हिरन उसके पीछे दौड़ते-दौड़ते प्राण खो देता है। इसी प्रकार दुनिया के किसी भोग, पद, प्रतिष्ठा में सच्चा सुख नहीं है, केवल सुख का आभास-भ्रम है, परन्तु उन्हें प्राप्तकर और भोगकर सुखी एवं तृप्त होने की आशा में उनके पीछे दौड़ते-दौड़ते मनुष्य जीवन खो देता है और उदास, हताश और अतृप्त होकर दुनिया से विदा हो जाता है। दुनिया के बड़े से बड़े भोग, पद और प्रतिष्ठा पाकर आज तक किसी को पूर्ण तृप्ति नहीं मिली है, क्योंकि उनमें सुख है ही नहीं, मात्र सुख का आभास है। आदत और आसक्ति के कारण उनमें सुख का भ्रम होता है। जैसे पानी सबके लिए शीतल होता है, आग सबके लिए गरम होती है, वैसे ही क्या कोई ऐसा भोग, पद, प्रतिष्ठा है जो सबके लिए सुखद हो। इंद्रियों के भोग, पद,

---

1. सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
   सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्॥
   दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
   वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत्॥
   (2/109/13-14)
2. सब ते साँचा भला, जो साँचा दिल होय।
   साँच बिना सुख नाहिना, कोटि करे जो कोय॥
   साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
   जाके हृदया साँच है, ताके हृदया आप॥
   (बीजक, साखी 64, 334)
3. धर्म न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुराण बखाना॥
   (मानस)

प्रतिष्ठा में सुख एवं तृप्ति है यह मात्र आभास है और यही आदमी के दुख, बंधन, परतंत्रता एवं भटकाव के कारण हैं। यदि मनुष्य इंद्रिय-भोग, पद, प्रतिष्ठा की वास्तविकता को और अंत में होने वाले इनके परिणाम को समझ जाये तो वह न तो इनको प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार का पापाचार करेगा और न ही इनको भोगना और पाना जीवन का लक्ष्य मानकर इनके पीछे दौड़ता रहेगा। फिर तो वह सच्चा सुख किसमें है इसकी शोध-खोज में जुट जायेगा। यदि हिरन को यह ज्ञान होता कि सामने जो दिखाई दे रहा है वह पानी नहीं किन्तु धूप की लहर है तो वह अपनी प्यास बुझाने के लिए उसके पीछे क्यों दौड़ता। आभासिक सत्य सदैव आदमी को भ्रम में डालकर भटकाता है। मनुष्य जितनी जल्दी इससे मुक्त होगा उतनी जल्दी वह अपने को दुखों से बचा लेगा।

दूसरा है व्यावहारिक सत्य। वह सत्य जो यथार्थतः सत्य तो न हो किन्तु जो व्यवहार चलाने के लिए आवश्यक हो, जिसके बिना व्यवहार नहीं चल सकता वह व्यावहारिक सत्य है। जैसे किसी का नाम, घर का पता, पति-पत्नी, पिता-पुत्र आदि का संबंध। नाम अपने आप में कुछ नहीं है कल्पित है, रख लिया गया है, परन्तु इसके बिना व्यवहार चल नहीं सकता। बिना नाम के भी किसी व्यक्ति या वस्तु की सत्ता हो सकती है। ऐसा नहीं है कि पहले नाम है तब व्यक्ति या वस्तु की सत्ता होती है, किन्तु पहले व्यक्ति या वस्तु की सत्ता होती है तब व्यवहार चलाने के लिए उसका एक कोई नाम रख लिया जाता है। और आवश्यकता पड़ने पर नाम को बदल भी दिया जाता है।

व्यवहार के अतिरिक्त नाम की कोई उपयोगिता नहीं है, परन्तु जब कोई व्यक्ति उस नाम के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है तब वह मेरा नाम सब तरफ फैले, सब लोग मेरे नाम को जानें, मेरा नाम दुनिया में अमर रहे, इसके लिए बड़ी आपाधापी, चतुराई, चालाकी, छल-कपट, नाना अनर्थ करने लग जाता है और ऐसा करके मानसिक संताप, अशांति, तनाव में ही जीवन व्यतीत कर देता है। यदि वह समझ लेता कि नाम तो केवल व्यवहार चलाने के लिए रखा गया है, इस नाम को बदलकर यदि कोई दूसरा नाम रख लिया जाये तो भी मुझमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। दुनिया भर में मेरा नाम फैल भी जाये तो क्या मेरे मन की जलन, चिंता, पीड़ा, तनाव मिट जायेंगे, फिर इसके लिए आपाधापी क्यों करूं। मुझे तो अपनी आत्मशांति एवं यथाशक्ति दूसरों की सेवा का काम करना है, ऐसा समझकर यदि आदमी अपना उचित कर्म करता रहे, तो अपने को बहुत सारे अनर्थों एवं आपाधापी से बचाकर शांतिपूर्वक जीवन जी सकता है।

पति-पत्नी, पिता-पुत्र आदि का जो संबंध है वह भी केवल व्यवहार के लिए है, शाश्वत नहीं है, परंतु मनुष्य समाज में यह संबंध न रहे तो समाज नाम की कोई चीज रहेगी ही नहीं, आदमी जानवरों से बदतर स्थिति में पहुंच जायेगा। अनेक मानसिक रोगों से तो वह घिर ही जायेगा, सुखपूर्वक जीवन भी नहीं जी पायेगा। जानवरों में प्रजनन के लिए नर-मादा का संयोग हो जाता है उसके बाद उनमें किसी का किसी से कोई संबंध नहीं रहता। प्रजनन के बाद बच्चा के कुछ बड़ा होने तक मादा तथा बच्चा का संबंध रहता है फिर उनका आपस में कोई संबंध नहीं रह जाता, परन्तु इस बात को लेकर जानवर कभी तनाव, भय, चिन्ता में नहीं रहते। इसी प्रकार यदि मनुष्यों का संबंध हो तो मनुष्य कभी सुखपूर्वक जीवन जी ही नहीं सकता। उसे व्यवहार को समुचित ढंग से चलाने के लिए संबंध स्वीकार करना ही पड़ता है। लेकिन इस संबंध में मनुष्य जब आसक्ति और मोह बना लेता है तब यह उसके लिए दुख, चिंता एवं तनाव का कारण बन जाता है। आदमी कोई भी गलत काम करता है तो आसक्ति एवं मोह के कारण ही।

एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से जो भी संबंध है, वह केवल व्यवहार के लिए है। यदि एक दूसरे के प्रति समर्पित होकर प्रेमपूर्वक सेवा एवं कर्तव्य भाव से इस संबंध का निर्वाह करते हैं तो वे व्यावहारिक जीवन में बहुत कुछ सुखी जीवन जी सकते हैं। परन्तु उसे यह भी समझने की आवश्यकता है कि चाहे जिसका जिससे जैसा भी संबंध है वह शाश्वत-स्थायी न होकर कुछ दिनों-वर्षों के लिए ही है और एक दिन यह संबंध किसी-न-किसी कारण से सदा के लिए टूटकर ही

रहेगा। यह समझ रहने पर न किसी के लिए मोह होगा और न किसी के लिए वैर। जब किसी के लिए मोह-वैर ही नहीं तब कलह, विवाद, लड़ाई, झगड़ा, छल-कपट का कोई कारण ही नहीं रह जायेगा और तब आदमी अधिक स्वतंत्रता एवं निर्भयतापूर्वक जीवन जी सकेगा।

जिस सत्य को तप और धर्म की संज्ञा दी गयी है उसका प्रयोग भी व्यावहारिक जीवन में ही होता है। यद्यपि कोई भी व्यवहार शाश्वत-स्थायी न होकर क्षणिक ही होता है, परन्तु सत्य का प्रयोग एवं व्यवहार इसी में ही होता है। व्यावहारिक जीवन में जब सत्य की प्रतिष्ठा होती है तब पारमार्थिक सत्य को आदमी ठीक ढंग से समझ सकता है और उसमें स्थित हो सकता है, जिससे उसके सारे दुखों का अंत हो जाता है।

जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा चार ढंग से होती है। वे ढंग हैं—सत्य ज्ञान, सत्य भावना, सत्य वाणी एवं सत्य आचरण। **सत्य ज्ञान**—जो जैसा है उसको उसी ढंग से जानना सत्य ज्ञान है। संसार में जड़ और चेतन दो मूलभूत पदार्थ हैं। दोनों एक दूसरे से सर्वथा पृथक उत्पत्ति-विनाशरहित अनादि-अनंत हैं। पूरी प्रकृति का क्षेत्र जड़ का ही विस्तार है। इसमें अनादि स्वभावसिद्ध क्रिया है तथा उसके अपने नियम हैं। जड़ जगत-प्रकृति की क्रिया एवं नियम किसी चेतन की इच्छा-अनिच्छा पर निर्भर नहीं है और न इसमें किसी के लिए कृपा एवं कोप है। इसमें सर्वत्र कारण-कार्य की व्यवस्था है। इसमें बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। जड़ तत्त्वों से सर्वथा पृथक चेतन हैं, जो गुण-धर्मों में एक समान होते हुए भी अस्तित्व की दृष्टि से एक नहीं अनेक-असंख्य हैं। चेतन अंश-अंशी, कार्य-कारण, व्याप्य-व्यापक भाव से रहित शुद्ध, बुद्ध, निर्मल, निर्विकार हैं। जो जड़-वासनावश देह धारण कर अनादि काल से संसार में भटक रहे हैं। मानव शरीर में स्वरूपज्ञान प्राप्त कर त्याग-वैराग्य की रहनी से जड़ की वासना त्यागकर मुक्त हो सकते हैं। इस प्रकार जड़-चेतन को उनके स्वभावसिद्ध गुण-धर्मों के सहित ठीक से समझ लेना सत्य ज्ञान है।

सत्य भावना—जो जैसा जान पड़े, जिस वस्तु को जिस तरह समझते हैं, उसको उसी तरह मानना, मन में वैसा ही भाव रखना, झूठी मान्यताओं को मन में स्थान न देना सत्य भावना है। जानना कुछ, मानना कुछ और कहना कुछ यह झूठी भावना है। मन में किसी प्रकार का छल-कपट, दुराव-छिपाव की भावना न होना—सत्य भावना है।

सत्य वाणी—जो जैसा देखा, सुना, सोचा गया है और जिसे जैसा जानते हैं बिना दुराव-छिपाव के उसे वैसा कहना सत्य वाणी है। यद्यपि जो बातें जैसी सुनी गयी हैं, जिस वस्तु को जिस रूप में देखा गया है, उनको वैसा ही उन्हीं शब्दों में ज्यों का त्यों कहना असंभव है। उसमें शब्दों का हेर-फेर होना, वर्णन करने का ढंग पृथक होना स्वाभाविक है, परन्तु यदि किसी कथन में किसी प्रकार का दुराव-छिपाव एवं किसी को धोखा देने का भाव न होकर पूरी ईमानदारी है एवं दूसरों के हित का भाव है तो वह कथन सत्य वाणी है।

शाब्दिक सत्य की अपेक्षा ईमानदारी पूर्ण परहित का भाव रखकर कोई बात कहना अधिक श्रेयस्कर होता है। महाभारतकार कहते हैं—सत्य बोलना श्रेयस्कर है, परन्तु सत्य को यथार्थ रूप में जानना कठिन है। मैं तो उसी को सत्य कहता हूं, जिससे प्राणियों का अत्यंत हित होता है। सत्य बोलना सबसे श्रेष्ठ है, परन्तु सत्य से भी श्रेष्ठ है हितकर वचन बोलना। जिससे प्राणियों का अत्यंत हित होता है, वही मेरे विचार से सत्य है।[1]

सत्य आचरण—जिसे सत्य समझा गया है जीवन में उसी का व्यवहार-आचरण करना सत्य आचरण है। जिसे जान लिया गया कि अमुक-अमुक आचरण-व्यवहार-कर्म अपने तथा दूसरों के लिए अहितकर एवं दुखद हैं उनका मनसा-वाचा-कर्मणा त्याग कर देना और अमुक-अमुक आचरण-व्यवहार-कर्म अपने तथा

---

1. सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम्।
यद् भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं ब्रवीम्यहम्॥
सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद् भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं मतं मम॥
(महाभारत, शांति पर्व, 287/20 तथा 328/13)

दूसरों के लिए हितकर एवं सुखद हैं मनसा-वाचा-कर्मणा उसका यथासंभव आचरण करना—सत्य आचरण है।

इस प्रकार व्यावहारिक जीवन में जब सत्य ज्ञान, सत्य भावना, सत्य वाणी एवं सत्य आचरण—इस चतुर्विध सत्य की प्रतिष्ठा हो जाती है तब पारमार्थिक सत्य को समझना सरल हो जाता है। पारमार्थिक सत्य वह है—जो भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल में एकरस रहे, जिसमें कभी कोई परिवर्तन न हो और जिससे हमारा कभी वियोग न हो। और वह सत्य है हमारा अपना आत्म अस्तित्व। यद्यपि जड़ तत्त्व भी तीनों काल में रहने वाले, उत्पत्ति-विनाशरहित अनादि-अनंत हैं, किन्तु वे परिवर्तनशील विकारी हैं तथा उनसे हमारा कभी स्थायी संबंध न होने से वे पारमार्थिक सत्य नहीं हो सकते। पारमार्थिक सत्य तो हमारा अपना आपा ही है। जिसे विभिन्न मत-मजहबों में जीव, चेतन, आत्मा, ब्रह्म, रूह, सोल आदि नामों से व्यक्त किया जाता है।

जिस ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, गॉड को प्राप्तकर मनुष्य तृप्त, कृतार्थ एवं दुखमुक्त होना चाहता है, वह व्यक्ति का अपना आपा ही है, उससे पृथक कुछ नहीं। अपने स्वरूप का सम्यक ज्ञान न होने से मनुष्य अपने से पृथक ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, गॉड आदि की कल्पना कर भटकता रहता है। अपने से पृथक एक पूर्णातिपूर्ण परमतत्त्व मानकर उसमें मिलकर पूर्ण कृतार्थ होने की भावना करना आभासिक सत्य है, क्योंकि उसकी कोई सत्ता-विद्यमानता नहीं है। यद्यपि एक सामान्य आदमी को धर्म-परमार्थ क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए वह एक संबल-सहारा का काम करता है, उसको प्राप्त करने के लिए तथा उसी को आधार मानकर अनेकानेक साधक-संत त्याग-वैराग्यपूर्ण निर्मल जीवन व्यतीत करते हैं, परन्तु उससे उन्हें कभी पूर्ण तृप्ति नहीं मिल पाती है और भटकाव में ही उनका जीवन बीत जाता है। मृग जल से आज तक किसकी प्यास बुझी है, किसको शीतलता मिली है।

पारमार्थिक सत्य को पाया नहीं जाता, क्योंकि वह तो नित्य प्राप्त ही है। केवल उसको सही ढंग से जानकर उसमें स्थित होने के लिए विषय-वैराग्य साधनाभ्यास करना होता है। इसके लिए न तो अनेक शास्त्रों का ज्ञान आवश्यक है और न ही कष्टसाध्य तपस्या। आत्मज्ञान ही सर्वोपरि ज्ञान है। जो अपने आप को जानकर आत्मस्थित हो गया मानो उसने सारे वेद-शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसीलिए महाभारतकार कहते हैं—जो वेदों को जानता है वह वेदों के उस भेद को नहीं जानता जो जानने योग्य है। वेदों के जानने योग्य भेद को वही जानता है जो सत्य में स्थित है।[1] वेदों का रहस्य सत्य है, सत्य का रहस्य आत्मसंयम है, आत्मसंयम का रहस्य मोक्ष है। यही संपूर्ण शास्त्रों का सार है।[2]

विभिन्न मत-मजहबों में परमसत्ता को लेकर जो विवाद है वह मन की मान्यताओं, आभासिक सत्य को ही पारमार्थिक सत्य मान लेने के कारण ही है। पारमार्थिक सत्य, परमसत्ता का तात्त्विक बोध हो जाने पर विवाद रह ही नहीं जाता। पारमार्थिक सत्य पाया नहीं जाता। वह तो नित्य प्राप्त ही है। केवल उसका स्मरण करना होता है और उसमें स्थित होने के लिए मन को निर्मल करने की आवश्यकता है। मन की निर्मलता के लिए सत्य भाव, सत्य वाणी एवं सत्य आचरण की आवश्यकता है। इसके बिना कोई भी ज्ञान काम नहीं करेगा।

ईश्वर को अपने से अलग मानकर उसे खोजने के बजाय यदि मनुष्य यह दृढ़ निश्चय कर ले कि सत्य ही ईश्वर है और सत्य भावना, सत्य वाणी एवं सदाचार ही उस ईश्वर की असली पूजा है तो उसका जीवन ही बदल जाये। जिस दिन इस सत्य रूपी ईश्वर पर लोगों का दृढ़ विश्वास हो जायेगा और उसकी असली पूजा को लोग समझ जायेंगे, उस दिन जीवन-जगत में कहीं कोई समस्या नहीं रह जायेगी। सब कुछ मंगलमय हो जायेगा।

—धर्मेन्द्र दास

---

1. यो वेद वेदान् न वेद वेद्यम्।
   सत्ये स्थितो यस्तु स वेद वेद्यम्॥ सनत्सुजातीय पर्व॥
2. वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
   दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम्॥
   (शांति पर्व 289/13)

हिन्दू कहौं तो मैं नहीं मुसलमान भी नाहिं

लेखक—श्री धर्मदास

(गतांक से आगे)

दूल्हा-दुल्हन का लौकिक प्रेम, लौकिक उपासना आदि शब्दों का प्रयोग करके ब्राह्मणों से विशेष प्रदर्शित करने का उद्देश्य कबीर जैसे महान संत का तात्पर्य कदापि नहीं हो सकता। कबीर बीजक में रमैनी 69 (ऐसा योग न देखा भाई, भूला फिरै लिये गफिलाई) के माध्यम से उन्होंने योगियों और सिद्धों पर व्यंग्य-बाण चलाया है जो लोग कंचन और कामिनी के अनुरागी थे। उन्होंने कहा—'हाट बजारे लावे तारी, कच्चा सिद्ध माया प्यारी'। वे लोग स्वयं को सिद्ध (Perfect) कहा करते थे परन्तु संत कबीर की परिभाषा के अनुसार 'केशव की कमला', 'शिव की भवानी', 'योगी की योगिनी', 'भक्तों की भक्तिन', 'ब्रह्मा की ब्रह्मानी' माया के भिन्न-भिन्न नाम और रूप हैं (श. 59)। जिस व्यक्ति के स्वयं का घर कांच का होता है वह दूसरों के घरों पर पत्थर नहीं फेंका करता। लेकिन कबीर तो बड़े-बड़ों के कांच के घरों पर ताबड़तोड़ पत्थर फेंक-फेंककर चकनाचूर किया करते थे। बेदाग कबीर के सिवा कौन यह कह सकता था—

चादर ओढ़ शंका मत करियो, दो दिन तुमको दीनी।
मूरख लोग भेद नहिं जाने, दिन दिन मैली कीनी॥
दास कबीर ने ऐसी ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी॥

सुन्दरी न सोहै, सनकादिक के साथ।
कबहुँक दाग लगावै, कारी हाँड़ी हाथ॥

इन पंक्तियों से दो बातें साफ होती हैं—(1) कबीर के जीवन में स्त्री का कोई सम्बन्ध नहीं था तभी वे कह सके 'दास कबीर ने ऐसी ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया'।

(2) उनके काल में साधु अपने साथ साधुनी बनाकर रखते थे जिससे उनकी बदनामी भी होती थी। जिस विरक्त संत को स्त्री का साथ कालिख की हांड़ी लगता हो वह स्त्री-पुरुष के लौकिक संबंध को अपनी उपासना का आदर्श बनाना चाहेगा—यह किसी विकृत सोच का ही निष्कर्ष हो सकता है। निम्न पंक्तियां इस बात को प्रमाणित करती हैं कि संत कबीर स्त्री से कितनी दूरी बना रखे थे—

कामिनी रूपी सकल कबीरा, मृगा चरिन्दा होई।
बड़-बड़ ज्ञानी मुनिवर थाके, पकरि सके नहिं कोई॥

(बी. श. 86/7-8)

भावार्थ—संसार के सभी मनुष्यों को काम-वासना रूपी मृगा चर रहा है, परन्तु बड़े-बड़े ज्ञानी और ऋषि-मुनि कामना-रूपी पशु को पकड़ने का प्रयास करते-करते थककर चूर हो गये फिर भी कोई पकड़ नहीं सका। इन पंक्तियों में संत कबीर का अपने निर्दोष एवं निर्मल चरित्र पर आत्मविश्वास झलकता है।

संत कबीर ने यहां तक कह दिया कि यदि साधु बनना चाहता है तो पहले जीभ का स्वाद, कुकर्म और काम-भोग—इन तीनों का त्याग कर तब पीछे से साधु-वेष ले।

जिभ्या कर्म कछोत्तरी, तीनों गृह में त्याग।
कबीर पहिले त्यागि के, पीछे ले बैराग॥

यदि ये तीनों तुम्हारे वश में आ जायें तो राजा, प्रजा और यमलोक में से कोई तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

जिभ्या कर्म कछोत्तरी, जो तीनों बस होय।
राजा परजा यमपुरी, गंजि सकै नहिं कोय॥

जिनकी इंद्रियां वश में नहीं हैं वे घर-परिवार छोड़कर साधु बन गये परन्तु ऐसे लोग सांसारिक भोगों के पीछे ऐसे घूमा करते हैं जैसे कुम्हार का चाक चक्कर काटता रहता है।

इन्द्री एकौ बस नहीं, छोड़ि चले परिवार।
दुनिया पीछे यों फिरै, जैसे चाक कुम्हार॥

कबीरपंथ में 'साकट' शब्द का प्रयोग अकसर होता है जिसका अर्थ प्रायः गैर-कबीरपंथी से होता है अथवा जिसे कबीरपंथ के गुरु द्वारा दीक्षा नहीं मिली हो। डॉ. युगेश्वर ने 'अथ साकट नर को अंग' शीर्षक के अंतर्गत 22 साखियां दी हैं। कबीर अमृतवाणी के 'निगुरां को अंग' में भी दस साखी हैं जिनमें 'साकट' शब्द आया है। इन साखियों के भावार्थ पर गौर करने से प्रतीत होता है कि साकट व्यक्ति के साथ बैठना भी मना है—

साकट संग न बैठिये, करन कुबेर समान।
ताके संग न चालिये, पड़ि हैं नरक निदान॥

साकट के साथ मत बैठो चाहे कर्ण और कुबेर समान धनवान हों क्योंकि उनके संग चलने से अंततः नरक ही होगा। यदि साकट का अर्थ 'निगुरा' से किया जाये तो उपदेश अव्यावहारिक लगता है क्योंकि घर में, टोला में, गांव में, नाते-रिश्तेदारी में शत-प्रतिशत गुरुमुख नहीं मिल सकते। जीवन-व्यापार के लिए उनके संग बैठना भी पड़ेगा और कुछ से मित्रता एवं रिश्तेदारी भी निभानी पड़ेगी। यदि माना जाये कि 'शाक्त' शब्द का अपभ्रंश 'साकत' से 'साकट' बना है तब इस साखी का अर्थ होगा कि शाक्त मत वालों से परहेज किया जाये। इस अर्थ से व्यवहार में बाधा नहीं आती। इस अर्थ का भाव निम्न साखी से मिलता है—

खसम कहावै बैस्नव, घर में साकट जोय।
एक घरा में दो मता, भक्ति कहाँ ते होय॥

पति वैष्णव और पत्नी साकट (दुर्गा, काली को पूजने वाली शक्ति की पुजारी) होने से एक ही घर में दो धार्मिक मत हो जाते हैं। अर्थात पति शाकाहारी एवं शुद्धाचरण का पालन करता है परन्तु पत्नी उसकी पूजा करती है जिसका मांस-शराब ही भोग है। दोनों धर्ममत परस्पर विरोधी सिद्धान्त के हैं। इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि कबीरवाणी शाक्त मत, जिसका वाममार्ग से घनिष्ठ सम्बन्ध है, के विरुद्ध गवाही देता है। बीजक के एक पद में संत कबीर कहते हैं कि पशु एवं मनुष्य के मांस-रुधिर एक समान होते हैं (श. 70)। इसी पद की तीन पंक्तियां अवलोकनीय हैं—

'मांस मछरिया तैं पै खइया, ज्यों खेतन में बोइया जी' मांस-मछरी तुम ऐसे खाते हो मानो तुमने खेत में बो रखा था। 'माटी के करि देवी-देवा, काटि-काटि जिव देइया जी' मिट्टी-पत्थर के देवता-देवी को प्रसन्न करने की लिए जीवों को काट-काटकर चढ़ा देते हो। 'जो तोहरा है साँचा देवा, खेत चरत क्यों न लेइया जी'—अगर तुम्हारा देवता सच्चे हैं और मांस उन्हें प्रिय है तो खेत में चर रहे पशुओं को क्यों नहीं खा लेते?

अभक्ष्य भक्षण एवं इंद्रियों के भोग-मैथुन (नारी) आदि की कबीर ने घोर भर्त्सना की है। दूसरी तरफ ब्राह्मण धर्म या सनातन धर्म के नाम पर हिंसात्मक वृत्ति के साथ वर्ण विचार का उन्होंने घोर विरोध किया है। एक वाममार्ग है तो दूसरा दक्षिणमार्ग। इसी भाव को प्रकट करती है यह पंक्ति—

बायें दहिने तजू बिकारा, निजु कै हरिपद गहिया। यहां 'बायें-दहिने' का तात्पर्य है वाममार्ग और दक्षिणमार्ग। पद का अर्थ है इन दोनों मार्गों में जितने भी विकार हैं सबका त्याग करो। विकारों के त्याग के बाद 'निजु कै हरिपद गहिया'—निज हरिपद को पकड़ लो।

इतिहासकारों ने अथवा विद्वानों ने संत कबीर का मूल्यांकन करने में वेद और ब्राह्मण (ब्राह्मण धर्म) विरोधी ही साबित किया और वाममार्ग के विरोध को नजरअंदाज कर दिया है। जबकि कबीरपंथ की आचार संहिता का आदर्श वाममार्गियों के विहित आहार-विहार के घोर विरोध पर केन्द्रित है जो ऊपर के विवेचन से स्पष्ट भी है। ऐसा क्यों किया गया? इसका उत्तर है नाथ, तांत्रिक, शैव, शाक्त आदि सभी मतों का मूलतः हिन्दू धर्म के अंग के रूप में गिनती करना, जो कभी नहीं रहा। प्राचीन आश्वमेधिक यज्ञों के स्थान पर वैष्णव धर्म ने हिंसा रहित यज्ञ का विधान चलाया। ऐतिहासिक प्रमाण है, वैष्णव, शैव, नाथ, तांत्रिक एवं शाक्त परस्पर एक दूसरे को नीचा दिखाते रहते थे। दयानन्द सरस्वती ने इन सबको अवैदिक धर्म कहा है। अगर अवैदिक हैं तो हिन्दू धर्म या सनातन धर्म कैसे हो सकते हैं? संत कबीर ने स्पष्ट कर दिया है कि उन्हें सभी धर्म मतों के विकारों से घृणा है चाहे वाममार्ग हो

या दक्षिणमार्ग। और जहां-जहां 'न हिन्दू न मुसलमान' प्रयोग उन्होंने किया है, उसका स्पष्ट मत है, जितने भी धर्मों की उत्पत्ति इस देश की है उन सभी से उनका वास्ता नहीं है। देशज धर्ममतों को मानने वालों का उद्‌बोधन उन्होंने 'हिन्दू' से किया है और मुसलमान वह है जिसने विदेशी धर्म—इस्लाम को अपना लिया है चाहे वह यहां का हो या बाहरी।

उन्हें वेद से विरोध नहीं था न कुरान शरीफ या अन्य धार्मिक ग्रंथ से। उन्होंने लिखा है कि 'वेद कितेब कहा किन झूठा, झूठा जो न बिचारे। (श. 97/12)' उन्हें न हिन्दू से घृणा थी और न मुसलमान से। घृणा थी तो केवल धार्मिक कुकृत्यों से—

को हिन्दू को तुरुक कहावै, एक जिमी पर रहिये।
वेद-कितेब पढ़ै वै कुतबा, वै मोलना वै पाँड़े।
बेगर-बगर नाम धराये, एक मिट्टी के भाँड़े॥
(श. 30/6/7, 8)

बीजक के पदों में जैन, बौद्ध, जटाधारी, वैष्णव, शैव, शाक्त, योगी, सिद्ध आदि सभी के नाम लिये हैं लेकिन सभी मतों को देशी और विदेशी अवधारणा पर हिन्दू और मुसलमान[1] से सम्बोधन किया है। तथा उनके आदि ग्रन्थों में वेद और कुरान का नाम लिया है। निंदात्मक भाव में उन्होंने कहा है—

पढ़ें वेद औ करें बड़ाई, संशय गाँठि अजहुँ नहिं जाई।
पढ़ें शास्त्र जीव वध करई, मूँड़ि काटि अगमन के धरई॥
(रमैनी 31/3-4)

वेद पढ़ता है और उसका अहंकार करता है, किन्तु आज तक वे संशयों से ग्रसित हैं। शक्ति या भूत-पिशाच के उपासक मूक पशुओं के मूड़ काटकर मूर्तियों के सामने चढ़ाते हैं। ऐसा करते समय अपने-अपने शास्त्रों के मंत्रों का पाठ भी करते हैं। इन पंक्तियों के द्वारा उन्होंने दक्षिणमार्गी-ब्राह्मण धर्म तथा वाममार्गियों—दोनों की उपासना में जीव-हत्या की निंदा करते हुए कहा है कि धर्मशास्त्रों का अहंकार करते हैं किन्तु जीववध करना नहीं छोड़ पाये। इस पद के साथ एक साखी है—

कहहिं कबीर ई पाखण्ड, बहुतक जीव सताव।
अनुभव भाव न दरशै, जियत न आपु रखाव॥

धर्म के नाम पर इन पाखण्डों ने जीवों को बहुत सताया है और अब भी सता रहे हैं। सब लोगों को इस बात का अनुभव है कि पीड़ा कितनी दुखदायी है परन्तु दूसरों को सताने में उसी भाव को नहीं देख पाते हैं। अगर दूसरे के जीवन की सुरक्षा नहीं कर सके तो अपने जीवन की रक्षा कैसे कर पाओगे? तुमसे कोई बलशाली तुम्हारे जीवन का अंत कर डालेगा।

उपर्युक्त पंक्तियों में संत कबीर ने कहा है—"पढ़ें शास्त्र जीव वध करई। मूंड़ि काटि अगमन के धरई।" कबीर सुनी-सुनाई बात नहीं करते थे बल्कि आंखिन देखी बोलते थे। उन्होंने देखा होगा कि काली-दुर्गा आदि देवियों पर पशु का सिर काटकर चढ़ाते समय पुरोहित मंत्रोच्चारण करता है। मिथिला के ब्राह्मण स्वयं को शक्ति के उपासक कहते हैं और मांस-मछली खाते हैं। यद्यपि वैष्णव धर्म के प्रचार से ब्राह्मणों में अधिकांश ने मांसाहार छोड़ दिया था और अपनी जीविका के लिए घर-घर जाकर सत्यनारायण की कथा करवाने लगे लेकिन मांसाहार के लोभी तथा दान-दक्षिणा के लालच में अवैदिक एवं वाममार्गियों की देवी पूजा की पुरोहितगिरी का धंधा भी अपना लिये। इसी आधार पर कबीर ने कहा, 'जो तोहरा को ब्राह्मण कहिये, तो काको कहिये कसाई' अथवा 'पांडे निपुण कसाई'।

कबीर भक्त या भगवान

पहले विस्तार से चर्चा हो गयी है कि संत कबीर ने ईश्वर एवं उसके मनुष्य रूप में अवतारों को स्वीकार नहीं किया है। अवतारों में चौबीस अथवा दस की अवधारणा है। नाथ संप्रदाय में नव नाथ भी अवतार हैं। लेकिन कबीर ने अस्वीकारात्मक अभिव्यक्ति देकर स्पष्ट कर दिया कि "जाहि राम को करता कहिये, तिनहुँ को काल न राखा (श. 90/7)'; 'हरणाकुश नख वोद्र बिदारा तिन्ह को काल न राखा'; गोरख ऐसो दत्त

1. उनके समय तक ईसाई मत यहां नहीं आया था। पहला ईसाई अकबर से मिला था।

दिगम्बर, नामदेव जयदेव दासा; तिनकी खबर कहत नहिं कोई, उन्ह कहाँ कियो है बासा (श. 86/10-12)।" सृष्टि के कर्ता राम तथा हिरण्यकश्यपु के पेट को नाखूनों से चीरकर मारने वाले नरसिंह आदि को भी काल ने नहीं छोड़ा। महायोगी गोरख एवं दत्तात्रेय, श्री पण्डुरनाथ (श्री विट्ठलदेव) के परम भक्त नामदेव तथा गीत गोविन्द के रचयिता जयदेव (राधा-कृष्ण के परमभक्त) के बारे में भी कोई नहीं बतलाता कि ये सभी बड़े नामी-गरामी लोग आजकल अपना निवास कहां बना रखे हैं।

सकल अवतार जाके महिमंडल, अनन्त खड़ा कर जोरे।
अद्‌बुद अगम औगाह रच्यो है, ई सब शोभा तेरे॥
(श. 86/17-18)

संसार में नाना धर्म मत हैं उनमें भी अवतारों, पीर, पैगम्बर, ईश-पुत्र की कल्पनाएं मनुष्यों ने की है। इस भूमंडल के सकल अवतारों के सामने असंख्य लोग हाथ जोड़े खड़े रहते हैं जिनके बारे में अद्‌भुत, अपार और अथाह आदि विशेषणों से महिमामंडित करने वाले धर्मग्रंथों की रचना हुई है जिन्हें किसी भगवान या अवतार ने नहीं गढ़ा है। यह शोभा, भव्यता एवं शान तो तुम्हारे हैं। 'अल्लाह राम जियो तेरी नाईं, जिन्ह पर मेहर होहु तुम साँई' (श. 97) सारे अवतार, चाहे नाम जो भी हो, तेरे समान देहधारी हैं। तू जिस पर कृपा कर दे उसी को भगवान बना दे। इसीलिए हे संतो, महंतो, आप लोग उसी का सुमिरन करो जो मृत्यु के फांस से बचा हुआ हो—'संत महन्तो सुमिरो सोई, जो काल फांस ते बाँचा होई। (श.90/1)। यह कसौटी हमें संत कबीर ने दी है। इस कसौटी पर राम, कृष्ण, नरसिंह, बुद्ध, गोरख, ईसा, मूसा, हजरत मुहम्मद, कबीर आदि में एक भी नहीं हैं जो काल-फांस से बचे हैं। अतएव न अन्य भगवान हैं न कबीर। यदि कोई दलील देकर कबीर को भगवान या अवतार कहता है तो वह उसका श्रद्धातिरेक है। किसी की अतिशयोक्ति से सच्चाई नहीं बदलती। लेकिन जो भगवान साबित करने के लिए बहस करता है वह कबीर पर ईश्वरवादी होने का तोहमत मढ़ता है। कबीर को मानने वाला उन्हें भगवान बनाकर उनका तौहीन करता है। भले पूंछ कटे लोग पूछ-कट बनवाकर अपने जैसा साबित करे, कबीर को जानने वाला ऐसा नहीं सोचता।

संत कबीर से पहले महात्मा बुद्ध हुए हैं जिन्होंने किसी सृष्टिकर्ता की सत्ता को स्वीकार नहीं किया था लेकिन बाद में उन्हें ही भगवान बना दिया गया। बौद्ध धर्म में एक शाखा बन गयी जो मानती है कि बुद्ध अनेक जन्मों तक बोधिसत्व रहे फिर अंत में बोधि प्राप्त करके जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो गये। यह केवल तर्क है सच्चाई नहीं। कबीर के शब्दों में—'अल्लाह राम जियो तेरी नाईं, जिन्ह पर मेहर होहु तुम साईं' यह तो मनुष्य-साईं की मेहरबानी है। बुद्ध के साथ एक अन्य विडम्बना भी दृष्टिगोचर होती है। महात्मा बुद्ध मुण्डक थे—सिर मुड़ाकर रखते थे लेकिन उनके अति श्रद्धालुओं ने जो मूर्ति बनवायी, उन मूर्तियों के सिर पर घुंघराले बाल बना दिये। ऐसे लोग कबीर और बुद्ध के श्रद्धालु नहीं हो सकते।

तो क्या कबीर भक्त थे?

शब्दकोश में 'भक्त' का अर्थ सेवानिष्ठ, निष्ठावान, समर्पित आदि है। 'भक्ति-मार्ग' का अर्थ है परमात्मा को पाने का श्रद्धा-मार्ग। समर्पण शक्तिसम्पन्न सत्ता या व्यक्ति के समक्ष ही होता है। अतएव 'भक्त' और 'भक्ति-मार्ग' की परिभाषा से संत कबीर का चरित्र मेल नहीं खाता क्योंकि अदृश्य ईश्वरीय सत्ता के सम्बन्ध में उनका मत है 'वर्णहु कौन रूप और रेखा, दूसर कौन आहि जो देखा (रमै. 6/1)' तथा अवतारी भगवान सामर्थ्यवान कहां—

जो सीता रघुनाथ बिवाही, पल एक सँच न कीन्हा।
तीन लोक के कर्ता कहिये, बालि बधो बरियाई॥
(श. 110/4-5)

तीनों लोकों के कर्ता की अर्द्धांगिनी को रावण हर ले गया। कर्ता को धोखे से बाली को मारना पड़ा। इतना ही क्यों—

शिशुपाल की भुजा उपारी, आपु भये हरि ठूठा (वही, शब्द 8)। भगवान श्रीकृष्ण ने शिशुपाल की

भुजाएं उखाड़ ली थी, यह वर्णन महाभारत के सभापर्व के 43वें अध्याय में मिलता है। कथानुसार श्रीकृष्ण की गोद में आने से शिशुपाल को दो अतिरिक्त भुजाएं जो जन्म से थीं, उखड़ गयी थीं। श्रीकृष्ण ने जब जगन्नाथ अवतार ग्रहण किया तब उनके हाथों में पंजे नहीं थे।

जब इस्लामी सल्तनत अपने शबाब पर थी तभी उत्तर भारत में कबीर ने उस मजहब के आका को ललकारा—

काजी तुम कौन कितेब बखानी।
झंखत बकत रहहु निशि-बासर, मति एकौ नहिं जानी।
शक्ति अनुमाने सुन्नति करतु हो, मैं न बदौंगा भाई।
जो खुदाय तेरी सुन्नति करतु है, आपुहि कटि क्यों न आई॥

(श. 84/1-4)

यह चैलेंज खुदा के बन्दों को और खुदाई सल्तनत को थी। यह कदम (आवाज) मौत को दावत देने के बराबर था। कबीर को खुश रहने के लिए अनेक विकल्प खुले थे। वे मस्जिद में जाते और सिजदा करते तो बिरादरी उन्हें सिर पर बैठा लेती। उन दिनों इस्लाम के भीतर प्रेममार्गी सूफी फकीरों का खूब दबदबा था। चिश्ती सिलसिले के ख्वाजा म्यून-उद्दीन चिश्ती (1141-1236) अजमेर को केन्द्र बना चुके थे। फरीद-उद्दीन औलिया (1238-1325) के कई खानकाहें देश में बन गयी थीं। हजरत निजामुद्दीन औलिया (1238-1325), जो बाबा फरीद के मुरीद थे, दिल्ली में प्रसिद्ध थे। शेख हमीद उद्दीन नगौरी (1192-1274) ने नागौर को प्रसिद्ध केन्द्र का दर्जा दिला दिया था। सुहरावर्दी सिलसिले में शहाबुद्दीन सुहरावर्दी (1145-1234) के शिष्य उत्तर-पश्चिम भारत में फैल गये थे। (मुगलकालीन भारत, मध्यकालीन भारत में सूफी मत, पृ. 373-379)। बाबा फरीद की प्रतिष्ठा के बराबर दूसरे किसी सूफी संत की भारत में प्रतिष्ठा नहीं थी। उनका संदेश हिन्दू और मुसलमान दोनों को प्रिय था। उन्होंने घृणा, हिंसा और बैर-भाव को त्याग कर पारस्परिक प्रेम का पाठ पढ़ाया। सिक्खों के गुरु अर्जुनदेव ने फरीद के पदों को आदिग्रंथ में स्थान दिया। (वही, पृ. 374)। सूफी मत निर्गुणमार्गी है लेकिन विरह के गीत गाता है।

संत कबीर प्रेममार्गी बन सूफियों में प्रसिद्ध हो सकते थे तब सुल्तान भी उनके यहां सिजदा करते। लेकिन उन्हें कुरान शरीफ पर आस्था लाना पड़ता। फिर कभी यह नहीं कह पाते—

भूला बे अहमक नादाना, जिन्ह हरदम रामहिं ना जाना।
बरबस आनि के गाय पछारी, गरा काटि जिव आपु लिया।
जीयत जीव मुर्दा करि डारे, ताको कहत हलाल हुआ॥

(श. 83/1-3)

लक्ष्मीबाई कालेज के प्रिंसीपल सुनीतापुरी के अनुसार, '14वीं तथा 15वीं शताब्दी के लगभग जनसामान्य की आस्था और भक्ति के भीतर एक व्यापक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ जो सिन्धु, गुजरात तथा महाराष्ट्र से लेकर बंगाल, असम और उड़ीसा तक फैल गया। भारतीय इतिहास और सांस्कृतिक जीवन में यही आन्दोलन भक्ति-आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। इस आन्दोलन ने संतों के एक नये वर्ग को जन्म दिया जिसके अगुवा कबीरदास कहे जा सकते हैं। (मध्यकालीन भारत : मध्ययुगीन भारत के सामाजिक, धार्मिक जीवन, पृ. 437)। उनका यह भी मानना है कि कबीर ने जहां एक ओर बौद्धों, सिद्धों और नाथों की साधना-पद्धति तथा सुधार-परम्परा के साथ वैष्णव सम्प्रदायों की भक्ति भावना को ग्रहण किया वहीं दूसरी ओर राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक असमानता के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी व्यक्त की। इस प्रकार मध्य काल में कबीर ने प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी विचारधारा को स्थापित किया (वही, पृ. 438)। कबीर ने समाज के आर्थिक ढांचे पर भी कड़ा प्रहार किया। जिस तथ्य को मार्क्स तथा एंजेल्स ने आधुनिक युग में पहचाना, कबीर ने बहुत पहले स्पष्ट घोषणा की थी कि समाज तथा राष्ट्र में अधिकतर विवाद अर्थव्यवस्था की असमानता से उपजते हैं। (वही, पृ. 439)। उपर्युक्त संदर्भों से स्पष्ट होता है कि कबीर के व्यक्तित्व में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक असमानता के विरुद्ध प्रतिक्रिया निखरी जिसके नतीजा में एक क्रान्तिकारी विचारधारा को

उन्होंने जन्म दिया था। कोई क्रान्तिकारी जब व्यवस्था के विरुद्ध आवाज बुलंद करता है तो उसका तेवर एक बागी का होता है तथा अपने आन्दोलन सम्बन्धी मुद्दों के प्रति अवज्ञाकारी साबित होता है। उसका स्वभाव उसे किसी के सामने झुकने की इजाजत नहीं देता। वरन चौराहे पर हुंकारता है—

कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर जारे आपना, चले हमारे साथ॥

संत कबीर ने सामाजिक और धार्मिक अव्यवस्था के विरुद्ध अवज्ञाकारी तेवर स्वीकारा था फिर हुजूरे यार-माशूक की हाजिरी में वह कैसे विसाले सनम की चाहत कर सकते थे जिस बात की गवाही नीचे की पंक्तियां देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बुजुर्ग सूफी-फकीरों को इबादतगाहों के भीतर बैठकर यार के दीदार के लिए तड़पते हुए संत कबीर अकसर देखा करते थे, तभी उन्होंने चुटकी ली होगी—

स्याही गई सफेदी आई, दिल सफेद अजहुँ न हुआ।
रोजा बांग निमाज क्या कीजै, हुजरे भीतर पैठि मुआ॥
(श. 93/8-9)

यहां 'हुजरे भीतर पैठि मुआ' का इशारा सूफी-साधना मार्ग की तरफ है। सूफी उपास्य को माशूक मानता है तथा उसकी साधना मात्र हुजूरे यार के दीदार के लिए है। कबीर कहते हैं काले बाल सफेद अवश्य हुए परन्तु तुम्हारा दिल तो अब भी सफेद नहीं हुआ। रोजा, बांग, नमाज का क्या फायदा? हुजरा में बैठे-बैठे मर जाने से विसाले यार कैसे हो, दिल तो अब तक पाक नहीं हुआ।

इन सब तथ्यों के आधार पर विदित होता है कि कबीर ने सहज, सरल तथा समर्पण का मार्ग, जहां मान एवं मर्यादा आसानी से मिल सकता था, ठुकराकर एक क्रान्ति का मार्ग अपनाया। अतएव न तो वे प्रेममार्गी याचक थे और न हीन, दीन श्रद्धालु जो किसी मृत्युपरायण भगवान के सामने स्वर्ग या जन्नत पाने के लिए रोता-बिलखता सिर नवाता।

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, समर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मार्पण अथवा आत्मनिवेदन को ही नवधा भक्ति कहा गया है। भक्ति के इन रूपों का संत कबीर ने बहिष्कार किया है। 'रामानन्द रामरस माते, कहहिं कबीर हम कहि कहि थाके' (श. 77/4) नशा करके लोग मातते हैं लेकिन रामानन्द 'रामरस' पीकर मात गये। पीकर मतवाला होना आलोचनात्मक भाव प्रकट करता है क्योंकि कबीर उन्हें बार-बार वर्जित कर-करके थक-हार गये। इतना ही नहीं नवधा भक्ति, जो स्वामी जी के भक्ति-मार्ग में मुख्य साधन थी उसे झूठे का बाना तक कह डाला—

'नौधा बेद कितेब है, झूठे का बाना'—(श. 113/6)

नवधा भक्ति में जिन नौ साधनों की बात रामानन्दी पूजा-पद्धति में बतलाई गयी है कबीर ने स्पष्ट शब्दों में इसे झूठलाते हुए कहा—'आपन आश कीजै बहुतेरा, काहु न मर्म पावल हरि केरा' तथा 'सो कहाँ गये जो कहत होते रामा' (श. 77/1-2) अर्थात सबसे अधिक भरोसा आप अपने पुरुषार्थ पर ही करें क्योंकि हरि-ईश्वर का रहस्य तो अब तक कोई नहीं समझ सका है। और वे लोग कहां चले गये जो राम-राम रट रहे थे? संत कबीर यथार्थवाद पर विश्वास करते हैं। संसार में जितने भी सम्प्रदाय हैं उन सबके अपने-अपने सर्वव्यापक, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान ईश्वर मौजूद हैं फिर भी कहीं मंदिर तोड़े जा रहे हैं तो कहीं मस्जिद; कहीं गिरिजाघर तो कहीं गुरुद्वारा। जो अपने गर्भगृह और स्वयं को न बचा सके उस पर भरोसा करना बालू से तेल निकालना है। उक्त व्याख्या से कुछ लोगों का मतभेद हो सकता है किन्तु विवेचकों ने इस तथ्य को मानने में हिचकिचाहट नहीं दिखाई।

कबीर का उपाय बहुत सरल है, अपने बाहुबल का भरोसा करो, दूसरों की आशा छोड़ दो। जिसके आंगन में ही नदी बहती हो, वह प्यासा क्यों मरे?

करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ बिरानी आस।
जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास॥
(बी. सा. 277)

आचार्य शुक्ल ने 'अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान भरोसे' अपनी नाव को बीच मझधार में छोड़ देने के सिवा दूसरा मार्ग नहीं माना लेकिन संत

कबीर किसी के अधीन हो जाने, झुक जाने या हार जाने के स्थान पर अपने पौरुष को जगाने के लिए प्रोत्साहित करते रहे। उन्हें अपने भविष्य को किसी अनजान हाथ के हवाले कर देना मंजूर नहीं था। आत्म बल जगाने के लिए एक सटीक उदाहरण देते हैं कि जिसके आंगन में नदी बह रही हो वह इस आशा में प्यासा बैठा रहे कि कोई भगवान आकर उसका प्यास बुझा देगा।

दूसरा मार्ग परावलंबन का था जिसका विकास रामानंद के बाद अधिक हुआ। उसमें सिखाया गया कि भगवान की मूर्तियों के आगे समर्पित हो जाओ; मंदिर जाकर माथा टेको; प्रार्थना-विनय करो, वहां रोने-गिड़गिड़ाने से भगवान तुम्हारे ऊपर कृपा अवश्य करेंगे। समर्पण करने वाले भक्त की श्रेणी में आते हैं। भक्ति मार्ग के प्रणेताओं ने विश्वास दिला दिया कि भगवान के भरोसे स्वयं को छोड़ दो, तुम्हारा दुख दूर होगा। प्रसिद्ध साहित्यकार जयशंकर प्रसाद ने 'रहस्यवाद' शीर्षक निबंध में अपनी व्याख्या इस प्रकार दी—"जिन-जिन लोगों में आत्मविश्वास नहीं था उन्हें एक त्राणकारी की आवश्यकता हुई (भक्ति काव्य यात्रा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 137)।"

"कृष्णाश्रय' नामक एक प्रकरण ग्रंथ में बल्लभाचार्य ने अपने समय की अत्यंत विपरीत दशा का वर्णन किया है जिसमें वेद-मार्ग का अनुसरण अत्यन्त कठिन दिखाई पड़ा है। देश में मुसलमानी साम्राज्य अच्छी तरह दृढ़ हो चुका था। सूफी पीरों के द्वारा सूफी पद्धति की प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रचार कार्य धूमधाम से चल रहा था। एक ओर 'निर्गुण पंथ' के संत लोग वेद-शास्त्र की विधियों पर से जनता की आस्था हटाने में जुटे थे। अतः बल्लभाचार्य ने अपने 'पुष्टिमार्ग' का प्रवर्तन बहुत कुछ देश-काल देखकर किया।" उक्त निष्कर्ष आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 126 में लिखा है। आचार्य शुक्ल के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बल्लभाचार्य द्वारा प्रणीत भक्ति मार्ग सूफी पद्धति एवं कबीर के निर्गुणपंथ से जनमानस के लगाव को कम करने हेतु विकसित हुआ था फिर समर्पित भक्ति-भाव की परिभाषा में कबीर की गणना उन पर अन्याय है।

(क्रमशः)

अब भी चेत, तू चेतन हारा

रचयिता—राधाकृष्ण कुशवाहा

'प्रश्न है आस्था का' कहते, इस कदर कि सब वही।
किन्तु जिसमें दम न हो, क्या मानना उसका सही?

समय जीवन धन व्यर्थ ही, क्या गँवाना ठीक है।
मूढ़ बन उस पर ही चलना, क्या कभी यह नीक है॥

हाँ बीज अध्यात्म का वह, वहाँ उसका मोल है।
धन्य है वह श्रेष्ठ है वह, अन्य से अनमोल है॥

भक्ति की सीढ़ी प्रथम वह, वहीं बैठे मत रहो।
बढ़ो ऊपर, सदा 'क' माने, कबूतर मत कहो॥

आस्था निरधार है तो, भटकते रह जाओगे।
वहाँ कुछ है ही नहीं, तो तुम वहाँ क्या पाओगे॥

पड़ा भेड़ियाधसान में तू, कभी से भटकता रहा।
कर विवेक परखा नहीं तू, कभी भी खोटा-खरा॥

कौन हूँ? क्या लक्ष्य? इस पर, ध्यान तू लाया नहीं।
सबकुछ पाकर क्या किए, जब खुद को ही पाया नहीं॥

अब भी भोले चेत जा, तब ही तेरा कल्याण है।
जन्म मानव का सफल, करने में तेरी शान है॥

बन्धनों को काट डालो, तभी तुम कृतार्थ हो।
धन्य हो जीवन तुम्हारा, आज के सिद्धार्थ हो॥

सन्त सज्जन सद्ग्रंथ, सद्गुरु को जो अपना लिया।
बोध पा रहनी में रह, पारख परम पद पा लिया॥

भोजन में संयम, बोलने में संयम, देखने में संयम और सोचने में संयम रखो। सर्वत्र संयम में जीने से चित्त स्ववश एवं शांत हो जाता है। किसी प्रकार की लोलुपता जीव को चंचल बनाती है। चंचलता पतन है। अपने आप पर पूर्ण नियंत्रण जीवन का सच्चा सुख है। चारों ओर से सिमिटकर अपने आप में लीन हो जाओ, फिर देखोगे तुम्हारे जीवन में आनंद के फूल खिल गये हैं। ***–पूज्य गुरुदेवजी***

व्यवहार वीथी

खाओ पिओ छको मत

मनुष्य कुछ भी बन जाये, कहीं भी चला जाये, जीवन-निर्वाह की कुछ आवश्यक क्रियाएं उसे करना ही पड़ता है। उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। जैसे खाना-पीना, देखना-सुनना, बात-व्यवहार, काम-धंधा आदि। इन पर संयम रखने से जीवन व्यवस्थित रहता है और असंयम रखने से अव्यवस्थित। वैसे तो जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिसमें संयम और सावधानी की आवश्यकता न हो, फिर भी मनुष्य कई बातों को नजरअंदाज कर देता है और इसमें क्या होता है, इतना तो चलता है, कहकर लापरवाही बरतने लगता है। जिसका खामियाजा उसे बाद में भुगतना पड़ता है।

मनुष्य को धन, पद, प्रतिष्ठा, शासन, स्वामित्व चाहे जितना मिल जाये उनसे उसे सुविधा तो मिल जायेगी, सुख नहीं मिल सकता। सुख तो उसे ही मिलता है जिसका शरीर स्वस्थ और मन प्रसन्न रहता है। दुर्भाग्य से मनुष्य जितना ज्यादा समय और ध्यान धन, पद, प्रतिष्ठा, शासन, स्वामित्व पाने के लिए दे रहा है उतना शरीर को स्वस्थ और मन को प्रसन्न रखने के लिए नहीं दे रहा है। जैसे गणित के सूत्रों को जान लेने पर गणित के सवालों को हल करना आसान हो जाता है, वैसे शरीर को स्वस्थ एवं मन को प्रसन्न रखने के भी कुछ सूत्र हैं, जिनका पालन करने पर जीवन को सुखमय बनाया जा सकता है। आइये उनमें से कुछ सूत्रों पर थोड़ा विचार करें—

1. **खाओ-पिओ छको मत**—दुनिया में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो बिना कुछ खाये जीवित रह सकता है। जीवित रहने के लिए सभी को कुछ-न-कुछ खाना ही पड़ता है, परंतु जहां मानवेतर प्राणियों का आहार-भोजन प्राकृतिक, संतुलित एवं संयमित होता है वहीं मनुष्य का भोजन बहुत कुछ अप्राकृतिक, असंतुलित एवं असंयमित हो गया है। मानवेतर प्राणी स्वाद के लिए नहीं अपितु क्षुधा-निवृत्ति के लिए खाते हैं, किन्तु मनुष्य क्षुधा-निवृत्ति के लिए नहीं अपितु स्वाद के लिए ज्यादा खाता है। और स्वाद के चक्कर में जो खायेगा वह जरूरत से ज्यादा ही खायेगा और अपने स्वास्थ्य को खराब करेगा।

आप खायें जरूर, लेकिन जो भी खायें उसमें इतना ध्यान अवश्य रखें कि वह शरीर की प्रकृति के अनुकूल, सुपाच्य, संतुलित एवं संयमित हो। कभी ठूंसकर न खायें। खाने के बाद पेट भारी-भारी न लगे। इसके लिए आवश्यक है कि भूख से थोड़ा कम खायें। अधिक तली-भुनी, मिर्च-मसाले, खटाई-मिठाई से परहेज रखें। ये चीजें खाते समय तो अच्छी लगती हैं, किन्तु शरीर, स्वास्थ्य के लिये सदैव अहितकर होती हैं। ऐसे खाद्य पदार्थों से भी परहेज रखें जिसे खाने के बाद शरीर एवं मन में उत्तेजना, आलस्य एवं प्रमाद आये।

जैसे दवाई मंहगी-सस्ती, खट्टी-मीठी जैसी भी हो सदैव उचित मात्रा में ही खायी जाती है और उचित मात्रा में खाने पर ही लाभकारी होती है वैसे भोजन जैसा भी हो सदैव उचित मात्रा में उचित ढंग से खाने पर लाभकारी होता है। अन्यथा जो भोजन उचित मात्रा में खाने पर शरीर के लिए अमृत का काम करता है वही भोजन गलत ढंग से पकाकर ज्यादा खाने पर जहर का काम करता है, पोषक के बदले मारक हो जाता है। ध्यान रखें, भोजन जैसा अमृत नहीं तो भोजन जैसा जहर नहीं।

ज्यादा खाने वाले का शरीर-स्वास्थ्य कभी ठीक नहीं रह सकता। बहुत जल्दी उसका शरीर अनेक रोगों का आश्रयस्थल बन जाता है। जिसका शरीर-स्वास्थ्य ही ठीक नहीं है, एक-न-एक रोग जिसके पास मेहमान बनकर उपस्थित रहता है न तो उसका मन कभी प्रसन्न रह सकता है और न तो वह व्यवहार-परमार्थ का कोई काम सही ढंग से कर सकता है। शरीर अस्वस्थ रहने पर किसी काम में मन लगेगा ही नहीं, उसे तो सदैव चिंता और भय घेरे रहेंगे, फिर वह आदमी सुखपूर्वक जीवन कैसे जी सकेगा।

चाहे योग करो चाहे भोग उसका आधार-माध्यम-साधन शरीर ही है। अस्वस्थ-बीमार शरीर से न योग सधेगा और भोग हो सकेगा। इसीलिए कहा गया है—प्रथम सुख निरोगी काया और काया को निरोगी बनाये रखने का सर्वोत्तम साधन है—संतुलित-सुपाच्य भोजन। इसीलिए कहा गया है—खाओ-पिओ छको मत। यहां छकने का तात्पर्य ज्यादा खाने से है। इतना सदैव ध्यान रखें कि ज्यादा खाना और गरिष्ठ खाना शरीर-स्वास्थ्य और मन की प्रसन्नता के लिए सदैव अहितकर होता है। संतुलित और सुपाच्य भोजन सबके लिए सब समय हितकर होता है।

2. बोलो चालो बको मत—मनुष्य को पशुओं से अलग करने वाली मुख्य दो शक्ति है एक मन और दूसरी वाणी। वाणी मनुष्य के लिए प्रकृति का एक अनुपम वरदान है। परंतु वाणी का कब, कहां और कैसे प्रयोग करना चाहिए इसका समुचित ज्ञान न होने से अधिकतम मनुष्य दुखी हैं। मनुष्य-मनुष्य के बीच का अधिकतम मनमुटाव, वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़ा वाणी के दुरुपयोग करने के कारण ही है। कितने लोगों की बातों को सुनकर लगता है कि वे बोलते कम हैं बकते ज्यादा हैं। न वे समय का ध्यान रखते हैं और न किससे, क्या, कैसे, कितना बोलना चाहिए इसका ध्यान रखते हैं। इसीलिए वे स्वयं अशांत-पीड़ित रहते हैं और दूसरों को भी अशांत-पीड़ित-दुखी करते रहते हैं।

माना कि आपके पास बोलने वाली जीभ है, आपके पास शब्दों का भंडार है, आपको खूब बोलना आता है और बिना रुके आप घंटों बोल सकते हैं, परंतु इसका मतलब यह नहीं कि समय, संयोग और संबंधों की परवाह किये बिना आपको जो चाहे सो बोलने का अधिकार मिल गया है। बोलिए जरूर किन्तु समय, संयोग, आवश्यकता देखकर बोलिए। ध्यान रखें शब्द वही के वही होते हैं लेकिन समय, संयोग, संबंध के अनुसार अर्थ बदल जाते हैं। समय, संयोग, संबंध का ध्यान रखे बिना बोलने पर हंसी का पात्र बनने एवं मार खाने के सिवाय और क्या होगा।

किसी की श्मशान यात्रा के समय यह सुनकर 'राम नाम सत्य है' आप यह मानकर कि राम का नाम तो पवित्र और सत्य है किसी के विवाह और जन्मोत्सव के समय कहने लग जायें कि 'राम नाम सत्य है' तो इसका परिणाम क्या होगा, सहज समझा जा सकता है। यह तो बोलना नहीं बकना होगा।

किसी लोककल्याण संस्था के उद्घाटन के समय यह कहना कि यह संस्था खूब फूले-फले समयोचित है, लेकिन किसी पागलखाना के उद्घाटन के समय 'यह पागलखाना खूब फूले फले' कहना तो बकना ही होगा। इसलिए बोलने के पहले शब्दों को तौल लें, कि उचित और समयानुकूल है या नहीं। बोलने के पहले शब्दों को तौल लेने पर न गलत बात मुंह से निकलेगी और न समय विरुद्ध। इसीलिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—

बोल तो अमोल है, जो कोई बोले जान।
हिये तराजू तौल के, तब मुख बाहर आन॥

वाणी मनुष्य की पहचान होती है। किस मनुष्य के क्या विचार हैं, उसका मन कैसा है, भाव कैसा है, उसके शब्दों से बहुत कुछ अंदाजा लगाया जा सकता है। कबीर साहेब कहते हैं—

बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर की घाट।
अंतर घट की करनी, निकरे मुख की बाट॥

हम-आप मनुष्य हैं और मनुष्य सामाजिक प्राणी है। जन्म से मृत्यु तक की सारी घटनाएं समाज के बीच ही घटित होती हैं। समाज के बीच सर्वथा मौन हो जाने से व्यवहार में अनेक प्रकार की दिक्कतें आ सकती हैं। इसलिए वाणी का प्रयोग तो करना पड़ेगा, सावधानी यह रखना है कि जो उचित और आवश्यक है उसे उचित ढंग से उचित मात्रा में बोला जाये न कि जब जो मन में आये बोलता चला जाये।

अनावश्यक बातें बोलना, व्यर्थ की बातें बोलना, समय विरुद्ध बातें बोलना, किसी की निंदा, चुगुली, बुराई करना, किसी को अपमानित करने वाली बातें बोलना, व्यंग्यभरी बातें बोलना, अश्लील बातें बोलना, बोलना नहीं बकना है और वाणी के दोष हैं। इनसे अपने को बचाकर रखें, क्योंकि ऐसी बातें वक्ता-श्रोता सबके लिए अहितकर ही होती हैं।

यदि आप प्रसन्न रहना चाहते हैं और प्रसन्नतापूर्वक जीवन जीना चाहते हैं साथ ही दूसरों की प्रसन्नता में सहयोगी बनना चाहते हैं, तो बोलने की कला को आत्मसात करें। जब बोलें जो बोलें उचित और हितकर ही बोलें। ऐसे शब्दों का उच्चारण न करें जिसे बोलने के बाद आपको पश्चाताप करना पड़े और सामने वाले के दिल को ठेस पहुंचे। ऐसी बात बोलें कि सुनने वाले को उसमें बर्फ की शीतलता और मिश्री की मिठास का अनुभव एक साथ हो। सद्गुरु कबीर की यह साखी सदैव स्मरणीय और अनुकरणीय है—

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करे, आपहु सीतल होय॥
शब्द सम्हारे बोलिये, अहं आनिये नाहिं।
तेरा प्रीतम तुझहिं में, दुश्मन भी तुझ माहिं॥

3. देखो भालो तको मत—हम कितने सौभाग्यशाली हैं कि हमें दो सुंदर आंखें मिली हुई हैं और दोनों आंखें बराबर काम कर रही हैं। आंखों का क्या महत्त्व है उनसे पूछिये जिनकी देखने की शक्ति चली गयी है या जो जन्म से ही नेत्र विहीन हैं। वैसे देखने की शक्ति मिल जाने मात्र से अपने को सौभाग्यशाली न मान लें, सच्चे सौभाग्यशाली तो वे हैं जो इस शक्ति का सही उपयोग करते हैं। देखने की शक्ति तो चील के पास भी है, वह बहुत दूर तक देख लेती है किन्तु उसकी दृष्टि सदैव मुरदे पर होती है, तो ऐसी दृष्टि का क्या मूल्य! देखने की शक्ति तो चकोर को भी मिली है, किन्तु वह चील के समान बहुत दूर तक नहीं देख पाता, परंतु उसकी दृष्टि आकाश में उगे चंद्रमा पर होती है। सोचें कि आप चील की दृष्टि का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं या चकोर की दृष्टि का। यदि आप चील की दृष्टि का प्रतिनिधित्व करते हैं, आपकी दृष्टि चील-दृष्टि है, सदैव किसी के चाम को देखकर मुग्ध होती रहती है तो आपकी यह दृष्टि आपको नरक में ही ले जायेगी। आप कभी प्रसन्न नहीं रह सकते, आपका जीवन ही नरक बन जायेगा।

हमें आपको देखने को सुंदर आंखें मिली हैं, तो इन सुंदर आंखों का प्रयोग सुंदर ढंग से करें। ध्यान दें, आंखें देखने के लिए मिली हैं न कि चमकाने, मटकाने, तरेरने के लिए। इसलिए देखकर खायें-पीयें, देखकर चलें-फिरें, देखकर उठे-बैठें, देखकर बात-व्यवहार, काम-धाम करें, किन्तु न तो किसी के घर में ताक-झांक करें और न किसी के जीवन में। सदैव गुणदृष्टि के मालिक बनें न कि दोषदृष्टि के। यदि किसी में दोष है और वह अपने दोषों को स्वीकारना तथा सुधारना नहीं चाहता तो उससे अलग हट जायें, उसका साथ छोड़ दें, उससे संबंध तोड़ लें, इसमें अपनी शांति है। साथ रहकर दोष देखते रहने से अपना मन ही खराब होगा और मन की प्रसन्नता नष्ट हो जायेगी।

चाहे घर हो या बाहर, दुकान हो या दफ्तर, कारखाना आंखें बंद करके तो रखी नहीं जा सकतीं। खोलकर ही रखना होगा और आंखें खुली रहेंगी तो अनेक प्रकार के दृश्य दिखाई पड़ेंगे ही। प्रयास-सावधानी यह रखना है कि जानबूझकर गलत दृश्य या चीजें न देखें, अकस्मात गलत दृश्य दिखाई पड़े तो उधर से दृष्टि हटा लें, नजरें झुका लें। सदैव सुंदर दृश्य, सुंदर चीजें ही देखें जिसका मन पर अच्छा प्रभाव पड़े। ज्यादातर गलत दृश्य देखकर ही मन विकारी, चंचल और उत्तेजित होता है और यह सदैव आदमी के दुख एवं व्यसन का कारण होता है। इसलिए देखें जरूर लेकिन तकें न। इससे आप अपने मन की प्रसन्नता को बनायें रख सकेंगे और सुखपूर्वक जीवन जी सकेंगे।

4. चलो फिरो थको मत—आदमी एक जगह चुपचाप तो बैठकर रह नहीं सकता। उसे जीवन-निर्वाह के लिए कोई-न-कोई काम-धंधा तो करना ही पड़ेगा, परन्तु पैसे के लोभ में पड़कर रात-दिन पागल के समान दौड़ते रहने से क्या फायदा जिससे न शरीर स्वस्थ रह सके और न मन प्रसन्न। जो शरीर का स्वास्थ्य और मन की प्रसन्नता-शांति को ही नष्ट कर दे उस पैसे का क्या मूल्य। आखिर आप अधिक पैसा क्यों कमाना चाहते हैं इसीलिए न कि सुखपूर्वक प्रसन्नता से जी सकें, लेकिन अधिक पैसा कमाने के चक्कर में यदि आपका शरीर लस्त-पस्त और मन अस्त-व्यस्त हो जाये तो आप प्राप्त पैसे का भी सुख

नहीं भोग पायेंगे, फिर उस पैसे का क्या फायदा! आप उसके मालिक नहीं मात्र पहरेदार बनकर ही रह जायेंगे।

काम-धंधा, परिश्रम तो जरूर करें, किसी दिशा में सफलता परिश्रम से ही मिलती है। लेकिन अधिक धन, बड़ा पद, खूब प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेना असली सफलता नहीं है, किन्तु असली सफलता है शरीर का स्वस्थ और मन का प्रसन्न रहना। जीवन में सर्वाधिक मूल्य एवं महत्त्व स्वस्थ शरीर एवं प्रसन्न मन का है। इसलिए इस पर ही अधिक ध्यान दें।

चलें-फिरें अर्थात काम-धंधा करें, किन्तु काम-धंधा के पीछे अपने को इतना पस्त न कर दें, इतना न थका डालें कि न पत्नी-बच्चे-परिवार के लिए समय दे सकें और न आत्मकल्याण-आत्मशांति के लिए ध्यान-भजन-पूजन-सत्संग-स्वाध्याय के लिए समय निकाल सकें।

ध्यान दें, जिस परिवार में आप रहते हैं उसके सदस्यों का भी आप पर अधिकार है। उनको प्रसन्न रखकर आप भी प्रसन्न रह सकते हैं और मात्र पैसे और सुविधा देकर आप उन्हें प्रसन्न नहीं रख सकते। इसके लिए तो आपको उन्हें समय देना होगा। यदि आपके पास परिवार के सदस्यों के लिए समय नहीं है, आपका सारा समय काम-धंधा, व्यापार-बट्टा सम्हालने में ही खर्च हो जाता है, तो आपको परिवार बनाना और बढ़ाना ही नहीं था। लेकिन आपने परिवार बना और बढ़ा लिया है तो परिवार के सदस्यों को समय देना, समय निकालकर उनके साथ बातचीत करना भी आपका फर्ज है, इसे सदैव याद रखें।

यदि आप सुख से जीना जाहते हैं, शरीर को स्वस्थ और मन को प्रसन्न रखना चाहते हैं, संबंधों में मिठास बनाये रखना चाहते हैं, व्यवहार को मधुर एवं सरल बनाये रखना चाहते हैं तो इन सूत्रों को याद रखें—1. खाओ पिओ छको मत, 2. बोलो चालो बको मत, 3. देखो भालो तको मत और 4. चलो फिरो थको मत।

—धर्मेन्द्र दास

संत वाणी

1. जो काम आप आज कर सकते हैं, उसे कल के लिए कभी न टालें।

2. यदि आपके मन में कोई गलत काम करने का विचार आता है तो उसे कल करने के लिए छोड़ दें, किन्तु यदि आपके मन में अच्छे काम करने का विचार आता है तो उस काम को आज और अभी कर डालें।

3. यदि आप वह काम नहीं कर पा रहे हैं जो आपको पसंद है तो आप उस काम को पसंद करना शुरू कर दें जिसे आप अभी कर रहे हैं।

4. अपने आपको अंदर-बाहर से इतना मजबूत बना लें कि कोई भी चीज या घटना आपके मन की शांति को भंग न कर सके।

5. प्रतिकूलताओं और विघ्नों की कसौटी से पार हुए बिना आज तक कोई महामानव नहीं हुआ है और न आगे हो सकेगा।

6. यदि आपकी बात सही है तो आपको क्रोध करने की आवश्यकता नहीं, और यदि आपकी बात गलत है तो क्रोध करना आपके लिए हितकर नहीं।

7. किसी पर क्रोध करना वैसा ही है जैसे लोहे के गरम गोला को हाथ में पकड़कर उससे किसी को फेंककर मारना।

8. घृणा-द्वेष के हजारों खोखले वाक्यों से प्रेम का एक शब्द ज्यादा बड़ा और हितकर होता है।

9. निष्ठाहीन, कुटिल और दुराचारी मित्र जंगली पशु से ज्यादा खतरनाक होता है। इससे सदैव भयभीत और दूर रहना चाहिए; क्योंकि जंगली पशु तो शरीर में ही जख्म करेगा, किंतु निष्ठाहीन, कुटिल मित्र मन को ऐसे घाव देगा जो कभी नहीं भरेगा।

10. जब खुद पर अनुशासन नहीं होता तभी मुख से अपशब्द निकलते हैं।

11. अज्ञान की अपेक्षा ज्ञान का भ्रम लोगों को ज्यादा भटकाता है।

12. धर्म है मन, वाणी, कर्मों पर पूर्ण संतुलन। इसका फल है शुद्ध व्यवहार की संपन्नता और शांति की प्राप्ति।

नारी क्यों बेचारी?

लेखिका—साध्वी सुमेधा

मनुस्मृति में कहा गया है कि स्त्री को बचपन में पिता के, जवानी में पति के एवं बुढ़ापा में पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए। वह कभी स्वतंत्र न रहे। संरक्षण में ही उसकी सुरक्षा है।

मनुस्मृति का रचयिता पुरुष है इसलिए उसने स्त्री की सुरक्षा पुरुष के हाथों में सौंप दी। शक्ति के हिसाब से सोचें तो बात ठीक है। परन्तु हम विचार करें कि स्त्री को खतरा किससे है? किसके भय से उसे पुरुष का संरक्षण जरूरी है? वह स्वतंत्र क्यों न रहे? सच कहूं तो पुरुष के भय से ही उसे पुरुष का संरक्षण जरूरी है। कैसी विडम्बना है उसका रक्षक ही उसका भक्षक बना हुआ है।

इतिहास उठाकर देखें तो पता चलेगा कि नारी हर दृष्टि से पुरुष से भारी होते हुए भी गंदी सोच के लोगों द्वारा उसे बेचारी बना दिया गया। नारी ही दुर्गा, सरस्वती और लक्ष्मी है। उसका स्थान सर्वप्रथम है। आज भी नारी का नाम आदर सहित सर्वप्रथम लिया जाता है। जिस देश में हम रह रहे हैं उस देश को भी भारत माता कहा जाता है।

लेकिन अफसोस माता की गोद में पलने वाला माता का लाल ही नारी जाति का अपमान करके तनिक भी शर्मिंदा नहीं हो रहा है। अपनी ही मां-बहन-बेटियों की बेइज्जती कर रहा है और ऐसे लोगों को उचित दंड भी नहीं मिल पा रहा है।

रामायण काल में भी सीता माता के साथ राम ने न्याय नहीं किया। अग्नि परीक्षा लेने के बाद भी उन्हें लोक-अपवाद वश गर्भावस्था के संकट काल में बिना कुछ कहे चुपके से लक्ष्मण के हाथों वन में छुड़वा दिया। जब जंगल में मां सीता लक्ष्मण द्वारा जान पायी तो उनका क्या हाल हुआ रामायण प्रेमी सब जानते हैं।

महाभारत काल में भी द्रोपदी के साथ धर्मराज कहे जाने वाले युधिष्ठिर ने जो किया क्या वह उचित था? एक नारी को पांच पतियों की पत्नी बना डाला। फिर जुआ में सम्पत्ति के समान भाइयों के सहित उसे भी दांव पर लगा दिया। जानते थे कि दुर्योधन दुष्ट प्रकृति का पुरुष है फिर भी। पुरुषों की भरी सभा में एक स्त्री की इज्जत उछाली जाये कितनी संकट की घड़ी रही होगी! सहज समझा जा सकता है।

स्त्री की सुरक्षा के विषय में स्त्री ने कलम या कदम उठाने का प्रयास ज्यादा नहीं किया। मैं अपनी मां, बहन-बेटियों से यही निवेदन करती हूं कि अपनी सुरक्षा हम स्वयं करना सीखें। जिस दिन हम अपनी सुरक्षा स्वयं करना सीख जायेंगे उस दिन पिता, पुत्र और पति भी हमारे सहयोगी सिद्ध होंगे। हमारी सुरक्षा हमसे बेहतर कोई और कैसे कर सकता है। इसके लिए कुछ बिन्दुओं पर हम विचार करें।

मेरा मानना यह है कि हम पूरी तरह से सम्हल जायें और समझ जायें कि इन घटनाओं के पीछे कारण क्या है और कैसे इनसे उबरा जा सकता है, तो समस्या का काफी मात्रा में समाधान हो जायेगा। इसके लिए पूरी नारी जाति को एकजुट होकर अपने कदम आगे बढ़ाने होंगे। शुरुआत हम स्वयं से करें, बदलाव जरूर आयेगा।

चोर के आगे चांदी की बड़ाई करना चोर को आमंत्रण देने के समान है। मनुष्य का मन सौंदर्य प्रेमी है और नारी जाति सौंदर्य की कलाकृति से परिपूर्ण है। पुरुष सदैव स्त्री का गुलाम रहा है और हर हाल में रहेगा। स्त्री पुरुष के बिना जीवन गुजर आराम से कर लेती है परन्तु पुरुष को बड़ी कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। गर्भ में मां की आवश्यकता सभी को होती है। नारी न हो तो बच्चे का शरीर पकेगा कहां? पैदा होते ही मां के दूध की आवश्यकता होती है। मां की गोद एवं सेवा की आवश्यकता बच्चों को पिता की अपेक्षा अधिक होती है। शिक्षा, संस्कार भी बच्चों को मां द्वारा ही अधिक होते हैं। मैंने इसलिए यह चर्चा

छेड़ी कि स्त्री-पुरुष दोनों इस विषय को गम्भीरता एवं विनम्रता से समझें। वैसे तो किसी का महत्त्व कम नहीं है परन्तु नारी जाति का कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसलिए वे अपने को खूब सम्हालें। आज समय बदल गया है। ये चारदीवारी से निकलकर बाहर आ गई हैं। अब वह जमाना गया जब ये घूंघट और दीवाल के भीतर रहती थीं।

लेकिन स्वतन्त्रता के नाम पर मर्यादाओं का उल्लंघन न करें, स्वछन्द न बनें। आज नारी की शिक्षा बढ़ी है, समानता का हक मिला है, भौतिक क्षेत्र में विकास किया है; परन्तु अफसोस तब करना पड़ता है जब वह इस विकास में भी अपने विनाश को नहीं रोक पा रही है। इसका कारण है चरित्र से ज्यादा चेहरे को सजाना।

आज की पढ़ी-लिखी नारियां जो अपने को आधुनिक समझती हैं वासना के दलदल में बुरी तरह धंसती चली जा रही हैं। इसका बहुत गहरा प्रभाव समाज पर पड़ रहा है। जिससे स्वयं का जीवन नरक से भी बदतर बना हुआ है।

लोगों की सोच है जब मैं कहीं जाऊं तो मेरी पहचान, मेरी गिनती गिने-चुने लोगों में हो, आधुनिक एवं सभ्य कहलाने वाले लोगों में हो। अच्छी बात है सोच कोई गलत नहीं है परन्तु तरीका बहुत गलत है। हम आधुनिक बनें, गिने-चुने लोगों में हम बेशक गिने जायें इसको कौन रोकता है परन्तु तरीका ठीक हो। लोगों की सोच बड़ी स्थूल हो गई है। वे इसके लिए चरित्र को प्रधानता न देकर चेहरे को ज्यादा प्रधानता दे रहे हैं, कपड़ों और गहनों को दे रहे हैं। आदरसूचक शब्दों को, मीठी वाणी को नहीं बल्कि भाषा को दे रहे हैं।

आज के समाज का सबसे बड़ा प्रदूषण है फैशन और व्यसन। जिसका माध्यम बना ब्यूटीपार्लर, मूवी, मोबाइल और इन्टरनेट। ये साधन लोगों की सुविधा के लिए बनाये गये परन्तु गंदी सोच के लोगों ने इसका गलत तरीके से उपयोग कर पतन का साधन बना डाला। जिसमें ब्यूटीपार्लर तो निरर्थक ही लगता है। फैशन के जितने साधन हैं ये सब पतन के कारण हैं। और व्यसन के जितने साधन हैं वे सब स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

फैशियल, मसाज, थ्रेडिंग-ब्लीचिंग ये सिर्फ लड़कियों की डायरी में हैं ऐसी बात नहीं है, और ड्रिंकिंग-स्मोकिंग सिर्फ लड़के जानते हैं ऐसी भी बात नहीं है। बराबरी का नशा बरबादी की ओर तेजी से ले जा रहा है। हम एक बार तो सोचें कि हमारी सोच हमें कहां ले जा रही है? हम कहां पहुंचेंगे?

आज जितना कमाया जा रहा है उसमें अधिकतर सुन्दर दिखे जाने के लिए गंवाया भी जा रहा है। बाल और गाल को तो हम खूब सजाते हैं परन्तु अपनी चाल को नहीं सजा पाते हैं। चाल को सजाये होते तो आज हाल इतना बेहाल न होता। नारी के नाम पर कोई न रोता।

समझदार लोगों ने कहा है—

"फैशन में मत बहा करो नारी धरम में रहा करो"

नारी का धरम है—शील, मर्यादा, सद्‌गुण, सदाचरण, जिसकी महक सबको अभिभूत करती है। यदि जीवन में खुशियों को बटोरना है तो पहला मंत्र है "सादा जीवन उच्च विचार"। पूरा मानव समाज नारी की गोद में पलकर बड़ा हुआ है। इसलिए अपने को ऐसा सुन्दर सांचा बनायें कि इससे हर ईंट का निर्माण सुन्दर हो।

नारियों में जो सौंदर्य के प्रति लगाव है बुरा नहीं, अच्छा है। बुरा तब होता है जब चरित्र को न सजाकर चेहरे को सजाती हैं, कृत्रिम शृंगार को श्रेय देती हैं, सद्‌गुणों को नहीं। यह सजावट जीवन में गिरावट लाती है।

एक संत कहते हैं—व्यवहार में सादगी हो, आचरण में श्रेष्ठता और विचारों में पवित्रता, यही जीवन की महानता है। यही आकर्षण स्थायी है। चेहरे का आकर्षण कुछ समय का है, परन्तु चरित्र का आकर्षण सदैव बरकरार रहता है। चरित्रवान बूढ़ा शरीर भी आकर्षित करता है। जीवन में महानता श्रेष्ठ आचरण से ही आती है, वस्त्र, आभूषण और पहनावे से नहीं।

सादगी से बढ़कर कोई श्रृंगार नहीं, सद्गुणों से बढ़कर कोई गहना नहीं, शील से बढ़कर कोई वस्त्र नहीं। इनसे सुशोभित व्यक्ति सदैव आकर्षण का केन्द्र है।

कुदरत को जो पसंद था उसने आपको सौन्दर्य प्रदान किया है। बाल, नाखून, दांत सभी अंगों को साफ स्वच्छ रखिए, उन्हें रंगाने या बढ़ाने की, तरह-तरह से टेढ़े-मेढ़े करने की कोशिश में समय, शक्ति और धन बरबाद न करें। इससे आप सुन्दर कम बेवकूफ ज्यादा दिखते हैं। नकल करने वाले लोग बे-अकल ज्यादा होते हैं। असली जीवन जीना सीखें और प्रकृति से शिक्षा लें। प्रकृति के परिवर्तन को स्वीकार कर सुखी जीवन जीना सीखें।

हिंसात्मक तरीके से जो सौंदर्य प्रसाधन तैयार किये जाते हैं उनका प्रयोग कर पाप के भागी न बनें। असली सुन्दरता का राज है "स्वस्थ तन स्वस्थ मन"। आप विचार करें रोगी और क्रोधी कभी सुन्दर दिखते हैं? चाहे वे जितने अच्छे कपड़े पहने हों, चाहे जितना मेकअप किये हों। फोटो खिंचवाने आप जाते हैं, फोटोग्राफर भी कहता है स्माइल प्लीज। क्या जरूरत है मुस्कुराने की। सब कुछ तो ठीक है। 5 सेकण्ड का मुस्कुराना फोटो को सुन्दर बना देता है, तो क्रोधरहित स्वभाव, सब समय का मुस्कुराना जीवन को सुन्दर क्यों नहीं बना सकता?

एक व्यक्ति ने लोगों से पूछा—सुन्दरता का राज क्या है? सुन्दर कैसे दिखें? लोगों ने तरह-तरह के उत्तर दिये—सुन्दर कपड़े, सुन्दर गहने आदि। सब नकार दिये गये। तब प्रश्नकर्ता से पूछा गया तो जवाब मिला कि सुन्दरता का राज है, प्रसन्नता। किसी ने सच कहा है "त्योरियां चढ़ाने की अपेक्षा आप मुस्कुराने से ज्यादा सुन्दर दिखते हैं।"

वाणी एवं वस्त्र आदमी की सुन्दरता के परिचायक हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिचय देते हैं उसके वाणी और वस्त्र। वस्त्र मर्यादित हैं और वाणी संयमित है तो आदमी का सम्मान होना अनिवार्य है। वाणी और वस्त्र में हलकापन न आने दें और यह तभी सम्भव है जब विचारों में हलकापन न हो। विचारों में वजनदारी लाने के लिए संगत और साहित्य पर ध्यान देना होगा। विचार बनने और बिगड़ने का माध्यम है संगत और साहित्य। संगत और साहित्य जैसे होंगे वैसे विचार बनेंगे और बिगड़ेंगे।

हर आदमी का मन अनादिकाल से वासना का गुलाम बना हुआ है। इसीलिए किसी ने कहा है कि सरल से सरल काम है मन को बिगाड़ना और कठिन से कठिन काम है मन को बनाना। पानी और मन की गति एक जैसी है नीचे की ओर बहना। पानी को यंत्र के द्वारा ऊपर चढ़ाया जाता है इसी प्रकार मन को ऊपर उठाने के लिए मंत्र की आवश्यकता है। मंत्र यानी मंत्रणा, राय, सही सलाह और सलाह कहां से मिलेगी? अच्छे लोगों की संगत और सद्साहित्य से।

आज विज्ञान का युग है। हमारी मुट्ठी में सारी दुनिया सिमिट कर आ गई है। हम समय-शक्ति का सदुपयोग करें। सौन्दर्य प्रेमी यह जान लें कि "स्वस्थ तन और स्वस्थ मन" ही सुन्दरता का गहरा राज है। इसके लिए आपको अपने जीवन में कुछ जरूरी परिवर्तन करने होंगे। आपको खाना-पीना, सोना-जागना नियमित करना होगा। स्वस्थ रहने के लिए कम खाना होगा, प्रसन्न रहने के लिए गम खाना होगा। दूसरों के गलत व्यवहार को और अपनी गलत भावना को सह लें, पचा जायें। प्रतिक्रिया में न पड़ें। ज्यादा समय न हो तो सुबह-शाम 10-10 मिनट अच्छे ग्रन्थों का अध्ययन करके बिस्तर से उठें और सोयें। अच्छे विचारों की महक मस्तिष्क में बरकरार रखें और क्रोध से बचने का पूरा-पूरा प्रयास करते रहें। ये हमारी सुन्दरता के लिए टॉनिक का काम करते हैं।

सुन्दर दिखने के लिए फैशन को कभी जीवन में न लायें। फैशन के नाम पर आज कपड़ों का चयन बेहूदा ढंग से किया जा रहा है। साड़ी में भी नारी उघाड़ी है, जबकि साड़ी भारतीय नारी की सभ्यता की पहचान हुआ करती थी। आज फैशन शो ने नारी को दृश्य, पुरुष को दर्शक बना दिया है। दृश्य जब दर्शक को आकर्षित करता है तो पतन का कारण बनता है।

आज कपड़े अंग ढकने के लिए नहीं अंग दिखाने के लिए ज्यादा बनाये और पहने जा रहे हैं। फैशन के नाम पर बेहूदा भद्दे और गंदे कपड़े पहने जा रहे हैं। आज लोग इतने अंधे हो गये हैं कि वे आधे नंगे हो गये हैं, परन्तु उन्हें दिख नहीं रहा है। लिखने में शर्म आ रही है परन्तु लोगों को दिखने में जरा भी शर्म नहीं लगती। नारी की सुन्दरता उसका शील, उसकी मर्यादा है।

सील बंद बोतल में कभी यह खतरा नहीं होता कि बोतल आड़ी-तिरछी रखी है तो तरल द्रव्य गिर जायेगा। परन्तु सील टूट जाने पर बोतल को सम्हालना और तरल द्रव्य को गिरने से बचाना बड़ा कठिन हो जाता है।

स्वतंत्रता के नाम पर मर्यादाओं का उल्लंघन न करें। देर रात अकेली कहीं आना-जाना, बेहूदा लिबास और आवाज खतरे से खाली नहीं है। किसी कारणवश ऐसा हो सकता है कि आप वासना का शिकार न बनें। लेकिन सामने वाले के मन में विकार का कारण आप अवश्य बनती हैं। इसे आप नकार नहीं सकतीं। और वह विकार 5 वर्ष से लेकर 95 वर्ष की नारी को भी शिकार बना सकता है।

आप कहती हैं कि पुरुष विकारी है, शिकारी है तो आपकी समझदारी आपको क्या कहती है? चोर के आगे चांदी की प्रदर्शनी लगायें? यह तो वही कहावत चरितार्थ करना हो गया "आ बैल मुझे मार"। इसलिए इज्जत अपने हाथों में है। इसकी सुरक्षा पर पूरी नारी जाति एकजुट होकर गम्भीरता से सोचें, और चरित्र की पवित्रता एवं सुन्दरता पर चेहरे से ज्यादा महत्त्व दें। सद्गुणों को अधिक से अधिक महत्त्व दें। मर्यादा को जीवन में स्थान दें। अपनी सीमारेखाओं को लांघने की कोशिश कभी न करें।

रामायण का एक प्रसंग हमें शिक्षा देता है कि सीता माता ने लक्ष्मण जी द्वारा खींची गई सीमा रेखा का उल्लंघन किया और अपने जीवन में बहुत दुख पाईं। यदि वे अपनों द्वारा दी गई मर्यादा का, सावधानी का उल्लंघन न करतीं तो रावण के द्वारा न उनका हरण होता और न अशोक वाटिका में बैठकर आंसू बहाना होता और न अयोध्यावासियों द्वारा ताना मारा जाता तथा न राम उन्हें वन में छोड़ने पर विवश होते।

वास्तव में वासना ही राक्षसी प्रवृत्ति है। यह आदमी से तरह-तरह के काम करवाती है। यही सूर्पनखा है (चरित्रहीन चेहरे की सुन्दरता में लीन) । प्रत्येक नारी के भीतर सूर्पनखा राक्षसी बैठी है। यदि उसे पहचान कर नष्ट न किया गया तो वह एक दिन हमारे नाक-कान कटवाकर ही दम लेगी। इसलिए अपनी सुरक्षा का राज अपने ही हाथों में है और वह है "सादा जीवन उच्च विचार"। चेहरे से ज्यादा चरित्र को सजायें। शील-मर्यादा ही सबसे बड़ा आभूषण है। सादगी से बढ़कर कोई शृंगार नहीं है।

पुरुष समाज भी नारी जाति का अपमान करके यह न सोचे कि वह बेइज्जत नहीं हो रहा है! क्योंकि हर पुरुष का नारी से गहरा संबंध है। नारी पूरे मानव समाज की मां है। वह किसी की बहन है तो किसी की बेटी और किसी की मां।

अपनी मां, बहन, बेटी के साथ-साथ परायी स्त्रियों में भी मां-बहन-बेटी का भाव पैदा कर नारी के उपकारों से उऋण हुआ जा सकता है। नहीं तो फिर मां का न गर्भ स्थान मिलेगा, न मां का अमृतमय दूध मिलेगा और न उसकी शीतल-ममता भरी गोद ही मिलेगी।

समझ गये न! आपको उष्मज खानी में जाकर कृमि-कीटादि योनियों में नाली का गंदा कीड़ा बनना पड़ेगा। यह मानव जीवन कर्म भूमिका है। आप जो बोयेंगे वही फसल काटेंगे।

अंततः निवेदन है नारी-पुरुष दोनों गम्भीरता से विचार करें, यह वासना का शिकंजा जब तक हमारे ऊपर कसा रहेगा हम नरक से उबर नहीं सकते। यह बेशकीमती मानव जीवन भोग के लिए नहीं बल्कि त्याग के द्वारा आत्मशांति प्राप्त कर मोक्ष-महल में प्रवेश करने के लिए मिला है। ❑

जक चिंतन

हठयोग का दिग्दर्शन, मन के संयम से शांति

शब्द-82

तुम यहि विधि समझो लोई, गोरी मुख मन्दिर बाजै॥
एक सर्गुण षट चक्रहिं बेधे, बिना बृषभ कोल्हू माचा॥
ब्रह्महिं पकरि अग्नि मा होमै, मच्छ गगन चढ़ि गाजा॥
नित अमावस नित ग्रहण होई, राहु ग्रासे नित दीजै॥
सुरभी भक्षण करत वेद मुख, घन बर्से तन छीजै॥
त्रिकुटी कुण्डल मध्ये मन्दिर बाजे, औघट अम्मर छीजै॥
पुहुमि का पनिया अम्मर भरिया, ई अचरज कोइ बूझै॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, योगिन सिद्धि पियारी॥
सदा रहे सुख संयम अपने, बसुधा आदि कुमारी॥

शब्दार्थ—लोई=लोगों। गोरी मुख=कुंडलिनी। मन्दिर=नाभि। एक सर्गुण=त्रिगुणयुत मन। षटचक्रहिं=मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि तथा आज्ञा। वृषभ=बैल। माचा=जोत दिया, नांधना, नहना। ब्रह्महिं=रजोगुण को। अग्नि=योगाग्नि। मच्छ=मछली, श्वास। गगन=ब्रह्मांड, ब्रह्मरंध्र। गाजा=गर्जने लगा, अनाहतनाद बजने लगा। ग्रासे=ग्रास, कौर। सुरभी भक्षण=गोमांस भक्षण, जीभ से तालुमूल का रसपान। वेदमुख=श्रेष्ठ मुख। घन=बादल, गगनगुफा। छीजै=क्षीण होना, छूना, तरबतर होना। यहां अर्थ है छूना, भीगना—'आनंद घन रसरासि पाय कै क्यों जग-छीलर छीजै।' त्रिकुटी कुण्डल=दोनों भौंहों के बीच का घेरा। मन्दिर=स्थान। औघट=दुर्गम स्थान, गगनगुफा। पुहुमि=पृथ्वी, पिंड। पनिया=श्वास। अम्मर=अम्बर, आकाश, ब्रह्मरंध्र, खोपड़ी। बसुधा=पृथ्वी। आदि कुमारी=सदा से कुंआरी, किसी की नहीं।

भावार्थ—हे लोगो! तुम हठयोगियों की बातें इस प्रकार समझो, कहते हैं कि कुंडलिनी के पास नाभि में सदैव 'परा' शब्द बजता रहता है। यह परा शब्द ही पश्यन्ति और मध्यमा के रूप में बदलकर मुख में आकर बैखरी बन जाता है अथवा जब योगी कुंडलिनी जाग्रत करता है तब नाभि में ध्वनि होने लगती है॥ 1॥ यह त्रिगुणात्मक मन छह चक्रों को क्रमशः वेधते हुए ब्रह्मांड में पहुंच जाता है। यह मानो बिना बैल के कोल्हू जोत देना है॥ 2॥ योगी लोग रजोगुण को पकड़कर योगाग्नि में होम देते हैं और उनका श्वास ब्रह्मांड में पहुंचकर अनाहतनाद की गर्जना करने लगता है॥ 3॥ ईडा तथा पिंगलारूप चन्द्र और सूर्य को सुषुम्णा में लय करने से योगी के लिए मानो रोज अमावस्या और ग्रहण लगे रहते हैं। इस प्रकार मानो रोज योगी राहु को भोजन देता है॥ 4॥ योगी अपनी जीभ को उलटकर और तालुमूल में लगाकर अपने श्रेष्ठ मुख से अमृतरसपान रूप गोमांस भक्षण करता है। उसकी गगनगुफा में बादल अमृत बरसते हैं और योगी उसमें भीगता है॥ 5॥ दोनों भौंहों के बीच के घेरे के ऊपर गगनगुफा में अनाहतनाद का बाजा बजता है। यही मानो त्रिकुटी कुण्डल मध्ये मन्दिर बजना है। इस गगनगुफा के दुर्गम घाट में योगी पहुंचकर तरबतर हो जाता है॥ 6॥ जमीन का पानी जैसे भाप बनकर आकाश में मानो भर जाता है, वैसे योगी पिण्ड के प्राण समेटकर ब्रह्मांड में एकाग्र कर देता है। इस आश्चर्य की बात को कोई बिरला समझता है॥ 7॥ कबीर साहेब कहते हैं कि हे संतो! सुनो, योगियों को लौकिक सिद्धि प्रिय है॥ 8॥ परन्तु सदा रहने वाला एवं अनन्त सुख तो अपने मन के संयम से होता है। इसके लिए इस हठयोग की कोई जरूरत नहीं। हठयोग से जो लौकिक सिद्धि पाने की लालसा की जाती है, यह महाभ्रम है। यह वसुधा तो सदा से कुंआरी है—"यह वसुधा काहू की न भई।" लौकिक सिद्धि नाशवान है॥ 9॥

व्याख्या—"गोरी मुख मन्दिर बाजै" यह एक प्रतीकात्मक कथन है। इसका सरल अर्थ हुआ कि गोरी के मुख-मन्दिर पर बाजा बजता है या गोरी का मुख-मन्दिर बजता है। इसमें 'गोरी' मुख्य शब्द है। यह हठयोग का प्रसंग है। हठयोग में कुंडलिनी का बड़ा

महत्त्व है जो एक काल्पनिक शक्ति है। कहते हैं कि नाभि के नीचे सर्प की कुंडली जैसी एक नस है, उसे कुंडलिनी कहते हैं। परन्तु डॉक्टरों की राय से वहां ऐसा कुछ नहीं है। तब योगी कहते हैं कि कुंडलिनी कोई नस नहीं, केवल एक शक्ति है। कहते हैं कि नाभि के पास कुंडलिनी का जहां निवास है वहां 'परा' शब्द की ध्वनि सब समय होती है। उसे योगी ही सुन सकता है, सामान्य लोग नहीं। यही मानो गोरी मुख मन्दिर बजना है। यह भी कल्पना है कि जब कुंडलिनी जाग्रत हो जाती है तब नाभि में ध्वनि होने लगती है। यही मानो गोरी मुख मन्दिर बजना है। यह भी माना जा सकता है कि जब कुंडलिनी जाग्रतकर सुषुम्णा को ऊपर ब्रह्मांड में ले जाते हैं तब जो वहां अनाहतनाद उठता है वही गोरी मुख मन्दिर बजना है।

"एक सर्गुण षट चक्रहिं बेधे, बिना बृषभ कोल्हू माचा।" रज, सत तथा तम ये तीन गुण हैं। मन इन तीनों गुणों वाला है। यही 'एक सर्गुण' है, जो षटचक्रों को वेधता है। मन के बिना तो कोई काम नहीं होता। योगी का मन मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि तथा आज्ञा—इन छहों चक्रों को वेधकर ऊपर भ्रमरगुफा में पहुंचता है, फिर वहां अनाहतनाद उठता है और ज्योति-प्रकाश होता है। यह बिना बैल के कोल्हू माचना है। कोल्हू, हल या गाड़ी कहीं भी बैल को जोड़ देना 'माचना' कहलाता है। साहेब कहते हैं कि योगियों का षटचक्रवेधन, नादश्रवण तथा ज्योतिदर्शन का जो निरन्तर चलने वाला कोल्हू है यह बिना बैल का चलता है।

"ब्रह्महिं पकरि अग्नि मा होमै, मच्छ गगन चढ़ि गाजा।" यहां ब्रह्म का अर्थ रजोगुण है। ब्रह्म का अर्थ होता है बढ़ना है। बढ़ना क्रिया है। क्रिया रजोगुण है। इसलिए यहां ब्रह्म का अर्थ रजोगुण करना उपयुक्त है। योगी लोग ब्रह्म को अर्थात रजोगुण को पकड़कर योग की अग्नि में होम देते हैं। इसका अर्थ है कि योगसाधना से वे रजोगुण को शांत कर देते हैं। "मच्छ गगन चढ़ि गाजा" मछली आकाश में चढ़कर गर्जने लगती है। यह मच्छ एवं मछली क्या है? इसे मन या श्वास कह सकते हैं। श्वास जब ऊपर खोपड़ी में एकाग्र होता है तब अनाहतनाद होने लगता है। इसी को ऐसा भी कह सकते हैं कि मानो मन ही गगनगुफा एवं खोपड़ी में चढ़कर गर्जने लगता है।

"नित अमावस नित ग्रहण होई, राहु ग्रासे नित दीजै।" चन्द्र-सूर्य का एक साथ हो जाना अमावस्या है। हठयोग में ईडा (नाक की बायीं) नाड़ी चन्द्र कहलाती है तथा पिंगला (नाक की दायीं) नाड़ी सूर्य कहलाती है। इनका इकट्ठा होकर सुषुम्णा में मिल जाना हठयोग की अमावस्या है। सुषुम्णा कहते हैं नाक के दोनों छिद्रों में सम श्वास चलने को। योगी चन्द्र-सूर्य नाड़ियों को सम करके रोज योगाभ्यास करते हैं। इसलिए उनके लिए मानो रोज अमावस्या लगी रहती है और उनके लिए रोज ग्रहण भी लगा रहता है। सुषुम्णा मानो राहु है और वह चन्द्र तथा सूर्य दोनों नाड़ियों को ग्रहणकर उन्हें अपने में पचा लेती है तो योगियों के लिए मानो रोज ग्रहण लगा रहता है। जब रोज ग्रहण लगा रहता है तब मानो योगी रोज राहु को ग्रास देता है, भोजन देता है। ग्रास कहते हैं ग्रहण करने को, ग्रसने को, पकड़ने को और ग्रास का अर्थ कौर, निवाला, आहार, निगलना भी होता है। ये सब अर्थ एक भाव के द्योतक हैं। पौराणिक कहानियों के अनुसार राहु चन्द्र और सूर्य को खाने के लिए भूखा रहता है, तो योगी मानो रोज चन्द्र-सूर्यरूप भोजन राहु को देता है। "राहु ग्रासे नित दीजै" सुषुम्णा-राहु को चन्द्र-नाड़ी तथा सूर्य-नाड़ीरूपी ग्रास रोज दिया जा रहा है।

पुराण की कथा है कि विप्रचित नामक पिता और सिंहिका नामक माता से राहु पैदा हुआ था। राहु बहुत बलवान था। समुद्र मथने पर जब अमृत निकला, तब देवताओं की पंक्ति में बैठकर उसने अमृत पी लिया था। उसके आस-पास में बैठे चन्द्रमा और सूर्य इस क्रिया को देख लिये और विष्णु को बता दिये। इसलिए विष्णु ने चक्र से राहु का सिर काट दिया। परन्तु अमृत पी लेने से वह मरा नहीं। सिर राहु तथा धड़ केतु के

नाम से अमर हो गये। राहु ने चन्द्रमा और सूर्य से बदला लेने की ठानी। इसलिए राहु चन्द्रमा और सूर्य को समय-समय से ग्रस लेता है, निगल लेता है, इसी को चन्द्र तथा सूर्य-ग्रहण कहते हैं। आज एक छोटा विद्यार्थी भी जानता है कि पृथ्वी, सूर्य तथा चन्द्रमा के एक सिधाई में आने से ग्रहण लगता है। इसे कोई राहु नहीं ग्रसता है। पौराणिक कथाओं के आधार पर योग में राहु, ग्रहण आदि का प्रतीकात्मक वर्णन है।

"सुरभी भक्षण करत वेदमुख" सुरभी कहते हैं गाय को, वेदमुख का अर्थ ज्ञानमुख एवं श्रेष्ठमुख है। योगी अपने श्रेष्ठमुख से गाय खाता है एवं गोमांस भक्षण करता है। यह भी प्रतीकात्मक कथन है। हठयोगी अपनी जीभ को उलटकर कपाल-कुहर अर्थात तालु में लगाते हैं। ब्रह्मरंध्र के सहस्त्रसार कमल के मूल में 'योनि' नामक त्रिकोणाकार शक्ति का केन्द्र मानते हैं। यही चन्द्रमा का स्थान माना जाता है। कहते हैं कि इससे अमृत झरता है। योगी जीभ से उसी का पान करता है। इस क्रिया को योग के पारिभाषिक शब्द में 'गोमांस भक्षण' कहा जाता है। यही "सुरभी भक्षण करत वेदमुख" का तात्पर्य है। "अवधू गगन मंडल घर कीजै। अमृत झरै सदा सुख उपजै बंकनाल रस पीजै।" हठयोगप्रदीपिका में बताया गया है "जो योगी नित्य गोमांस भक्षण करता है तथा अमर वारुणी का पान करता है उसको मैं कुलीन मानता हूं। इसे न करने वाले लोग कुलघातक हैं। यहां गो-शब्द का अर्थ जीभ है और उसे तालुमूल में प्रवेश कराना गोमांसभक्षण है जो महान पापों का नाश करने वाला है।"[1] यह हठयोगियों की धारणा है।

"घन बर्से तन छीजै" बादल बरसते हैं और शरीर भीगता है। योगियों की कल्पना है कि खोपड़ी की गगनगुफा के बादल गर्जनापूर्वक वर्षा करते हैं और योगी उसमें भीगता है। अर्थात योगी उस अनुभव-आनन्द में तरबतर हो जाता है। नाद होना गर्जना है, प्रकाश की चिमचिमाहट होना बिजली चमकना है, उसका अनुभव वर्षा है। "छीजै" के अर्थ क्षीण होना तथा छूना दोनों हैं। दोनों अर्थ योगी में लग जाते हैं। योगी योग-साधना में अपने शरीर को स्वल्पाहार देता है। इसीलिए उसका शरीर क्षीण अर्थात दुबला हो जाता है, परन्तु शरीर दुबला होने पर भी उसके मुख का तेज बढ़ जाता है। हठयोगप्रदीपिका में सिद्धि के आठ लक्षण बताये गये हैं—"शरीर दुबला हो जाता है, मुख प्रसन्न हो जाता है, नाद प्रकट होता है, नेत्र निर्मल हो जाते हैं, रोग का अभाव हो जाता है, वीर्य पर विजय हो जाती है, अग्नि प्रदीप्त हो जाती है तथा नाड़ी शुद्ध हो जाती है।"[2] इस प्रकार योगी का शरीर क्षीण होता है। छीजै का अर्थ छूना, स्पर्श करना एवं तरबतर होना भी है। योगी अपने अनुभव में तरबतर होता है।

"त्रिकुटी कुण्डल मध्ये मन्दिर बाजे" दोनों आंखों के ऊपर दोनों भौंहों के बीच के स्थान को 'त्रिकुटी' कहते हैं। यदि 'कुण्डल' का अर्थ कुण्डलिनी लिया जाये तो अर्थ होगा कि कुंडलिनी के पास स्थित मूलाधार चक्र से लेकर त्रिकुटी स्थित आज्ञाचक्र तक छहों चक्रों का वेधना ही त्रिकुटी कुण्डल मध्ये मन्दिर बाजना है। यदि त्रिकुटी से लेकर ऊपर गगनगुफा के गोलक को कुण्डल कहा जाये, तो गगनगुफा में होता हुआ अनाहतनाद ही मन्दिर बाजने का मतलब होगा। अर्थात गगनगुफा रूपी मन्दिर में अनाहतनाद के बाजे बजते हैं। यही अर्थ ज्यादा ठीक लगता है। "औघट अम्मर छीजै" अर्थात उस दुर्गमघाट रूपी गगनगुफा के अमृत-रस से योगी भीगता है। यहां भी छीजै का अर्थ स्पर्श करना एवं भीगना अधिक उपयुक्त लगता है।

---

1. गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिवेदमरवारुणीम्।
   कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातकः॥
   गोशब्देनोच्यते जिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि।
   गोमांसभक्षणं तत्तु महापातकनाशनम्॥
   (हठयोग प्रदीपिका 3/47-48)

2. वपुः कृशत्वं वदने प्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले।
   अरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं नाड़ीविशुद्धिर्हठयोगलक्षणम्॥
   (हठयोग प्रदीपिका)

"पुहुमि का पनिया अम्मर भरिया, ई अचरज कोइ बूझै।" पृथ्वी का पानी गरमी और हवा के संयोग से भाप बनकर आकाश में भर जाता है, इस अचरज भरी बात को कोई बिरला समझता है। इसी प्रकार नीचे पिंड के श्वास को योगी ऊपर ले जाकर गगनगुफा एवं सहस्त्रकमल में भर देता है जहां नाद होने लगता है तथा प्रकाश जल जाता है। इस आश्चर्य भरे विषय को कोई योगी ही समझता है।

"कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, योगिन सिद्धि पियारी।" कबीर साहेब संतों से कहते हैं कि इन योगियों को सिद्धि बहुत प्यारी लगती है। ये जनता को चमत्कार भरे काम दिखाकर उनसे ऐश्वर्य, सम्मान एवं पुजापा पाने की चेष्टा रखते हैं। यदि चुहिया को पाने के लिए पहाड़ खोदा जाये तो यह मिथ्या श्रम है। यदि हठयोग के बहुत परिश्रम के बाद केवल नादश्रवण एवं ज्योतिदर्शन फल माना जाये और लोगों को चमत्कार दिखाकर लौकिक धन एवं सम्मान पाने की चेष्टा हो, तो यह कोई विवेक की बात नहीं हुई।

"सदा रहे सुख संयम अपने" सदा रहने वाला सुख, आत्यंतिक सुख, परमानन्द, परमशांति तो अपने मन का संयम करने में है। ये षटचक्र वेधन, जीभ उलटाकर खोपड़ी का मैला पानी चाटना, खोपड़ी की ध्वनि तथा प्रकाश सब व्यर्थ का श्रम है। अनन्त आत्मिक सुख प्राप्त करने के लिए तो विवेक एवं द्रष्टा-अभ्यास द्वारा केवल अपने मन को वश में कर लेना चाहिए। जहां अपने मन का पूर्ण संयम हुआ, वहां एकरस समाधि-सुख है। सिद्धि द्वारा संसार के ऐश्वर्य और सम्मान पाने का मोह तो महा अज्ञान है। यह माया किसकी चेरी बनकर रही है! 'बसुधा आदि कुमारी' है। "यह बसुधा काहू की न भई।" संसार की माया किसके पास रहनेवाली है। अर्थात संसार के सारे ऐश्वर्य और सम्मान नाशवान हैं। अतः इनके मोह को छोड़कर और मन को अपने वश में करके सच्चे अर्थ में सुखी होना चाहिए।

मन

रचयिता—डॉ. अमृत सिंह

पवन वेग से उड़ने वाला, बड़ा निराला मन का पंछी,
नापे धरती अँबर पल में, अद्‌भुत जीवन पथ का पंथी।

अति कठिन पथ रोकना मनका, अश्व सा ये दौड़ता सरपट,
भटके कभी वीरान निर्जन, लेता नहीं चैन की करवट।

उड़े पंख बिन दूर गगन में, चले पाँव बिन कोसों दूर,
नहीं ठहरता कहीं एक पल, जाने क्यों इतना मजबूर।

गर गया घिर वासनाओं में, हित अहित समझे नहीं अपना,
ये कब कहाँ जाये भटक, बहुत दुश्कर मन साधकर रखना।

पाकर प्रलोभन नेह का, फिरता भ्रमर सा कली कली,
बंधकर मोह के बंधन, फिरता आवारा सा गली गली।

मन की उड़ानें कल्पनाएं, चाहतें मन की अनेकों,
मीत हैं मन के हजारों, हैं शत्रु भी मन के अनेकों।

मन ही मंदिर मन ही देवता, हैं मन के मर्म हजार,
मन ही साधना, मन ही साधक, मन की महिमा अपरंपार।

संस्कार

रचयिता—श्री कामदेव सिंह

ऐसे हो संस्कार, जहाँ आपस में हो प्यार,
एकता जिसके आधार—खुशहाल परिवार।

ऐसे हो संस्कार, मिटा दे अन्धकार,
बड़ों का हो प्यार—बच्चों को मिले दुलार।

ऐसे हो संस्कार, जहाँ खुशियाँ रंग हजार,
सुख-दुःख एकाकार—तीज हो या त्यौहार।

ऐसे हो संस्कार, जैसे एक ऊँची मीनार,
गर्व से यहाँ पले, दया, धर्म, उपकार।

ऐसे हो संस्कार, संकल्प से करे तैयार,
जिसमें सिखाये जाएं—सच्चाई और सदाचार।

ऐसे हो संस्कार, जिसके बन्धन एक उपहार,
पहचान हो हमारी हो हम सदाबहार।

अहंकार न करें

लेखक—जगन्नाथ दास

मनुष्य की अनगिनत इच्छाएं, निगेटिव विचार, दोषदृष्टि, चिंता, अहंकार एवं अपना ही बुरा स्वभाव उसे शांति से दूर धकेलता है। संसार दुखों का दर है, शरीर रोगों का घर है, सभी पदार्थ नश्वर हैं, फिर अहंकार क्यों? संत वचन हैं—'त्यौरियां चढ़ाने के बजाय मुस्कराने से आप ज्यादा सुन्दर लगते हैं।' 'अहंकार के बजाय विनम्रता की आवाज दूर तक जाती है और सब लोग समझते हैं।'

एक संत से एक जिज्ञासु ने पूछा—मनुष्य जीवन में सबसे बड़ा गुण क्या है? संत बोले—'विनम्रता।' जिज्ञासु ने कहा—कैसे? संत—बेटे! विनम्रता में दया, क्षमा, सत्य, शील आदि सारे सद्गुण अपने आप आ जाते हैं क्योंकि विनम्र व्यक्ति हर वस्तु और हर व्यक्ति से सार ग्रहण कर लेता है। वह किसी के दोषों को नहीं देखता इसलिए विनम्रता सबसे बड़ा सद्गुण है। जिज्ञासु ने पूछा—और सबसे बड़ा अवगुण क्या है? संत बोले—सबसे बड़ा अवगुण है—अहंकार। क्योंकि अहंकार में काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष आदि सारे अवगुण अपने आप आ जाते हैं। अहंकारी व्यक्ति हमेशा अशांति और दुख में जीता है। वह करोड़ों का ऐश्वर्य पाकर भी सुखी नहीं होता क्योंकि उसका मानसिक विकार बना ही रहता है। अहंकारी आदमी को सब जगह अपमान का ही बोध होता है। अहंकारी व्यक्ति भरे-पूरे संसार में भी अकेला रहता है। उसके पास कोई जाना नहीं चाहता, किन्तु जो दूसरों के आंसू पोंछना जानता है वह कभी अकेला नहीं पड़ता। उसके पास सब जाना चाहते हैं, सहयोग करते हैं। बात सच भी है। यदि आप विनम्र एवं शांत हैं, तो सब आपको गले से लगाना चाहेंगे। यदि आप अहंकारी होंगे तो, नापसंद ही किये जायेंगे। यदि आप शांत और सौम्य हैं तो सबको आपके पास ही स्वर्ग नजर आयेगा। आप यदि बदमिजाज हैं, तो आपसे दूर रहने में ही सबको सुकून महसूस होगा। जरा सोचिए कि आप एक-दूसरे की करीबी चाहते हैं या दूरी?

जब बीज टूट जाता है, तभी वृक्ष अंकुरित होता है। जब-जब हम परमात्मा (आत्मशांति, आत्मस्थिति) के द्वार पर अपने अहंकार को लेकर जाते हैं, तब-तब परमात्मा (अपनी आत्मा) का द्वार हमें बंद मिलता है। जो अहंकार, अभिमान से भरे हैं उसके लिए परमात्मा का द्वार सदा बन्द रहता है।

अहंकार के शिखर पर बैठा व्यक्ति किसी पेड़ का ठूंठ हो सकता है, छांव देने वाला तरुवर नहीं। वह गड्ढा हो सकता है, शीतलता देने वाला सरोवर नहीं। "फूटा घड़ा और फूला व्यक्ति हमेशा खाली रहता है।" परमात्मा, शांति, मुक्ति के द्वार उनके लिए ही खुला है जो अहंकार से पूर्णतः रिक्त हो चुके हैं। संतों ने ठीक ही कहा है—हे मनुष्यो! अहंकार के कार से उतर जाओ और विनम्रता के विमान में चढ़ जाओ तो तुम्हारी मुक्ति संभव है। मुक्ति और भक्ति का मार्ग अकेले का होता है। वहां और किसी चीज का प्रवेश नहीं होता है। यथा—

भक्ति द्वार अति साँकरा, राईं दसवें भाय।
मन तो मैगल होय रहा, कैसे आवै जाय॥

(कबीर अमृतवाणी)

मुक्ति ऐसी चीज है, सबको छोड़े होय।
जब तक राखै अन्य को, तब तक तेहि को खोय॥

(सद्गुरु विशालदेव)

अहंकार, अभिमान, राग-द्वेष मुक्ति और भक्ति के लिए विष है। इस विष को रखकर कोई शांत जीवन नहीं जी सकता, शांत मन का स्वामी नहीं बन सकता, चित्त की जलन नहीं मिट सकती और चित्त की जलन मिटे बिना हम जो भी और जितना भी ऐश्वर्य, पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान पा जायें, हमारा दुख नहीं मिटेगा।

आदमी का अहंकार बोलता है कि मैं इतना बड़ा धनवान हूं, मैं इतना बड़ा विद्वान हूं, मैं बहुतों का शासक हूं, मेरे अनुसार ही लोग काम करें, मैं प्रजा का मालिक हूं। जब-जब हम अहंकार करते हैं तब-तब

हम मूर्ख होते हैं और हमारी मूर्खता पर परमात्मा हंसता है। प्रकृति हंसती है। हम अपने आपको तो मानते हैं ज्ञानानन्द लेकिन काम करते हैं मूर्खानन्द का।

जिन प्राणी-पदार्थों का हम अहंकार करते हैं थोड़े दिनों में समय रूपी काल उनको बदलकर रख देता है। सारी घटनाएं थोड़े दिनों में संस्मरण मात्र रह जाती हैं। सारी कहानी काव्य में बदल जाती है। जीवन के सारे गीत थोड़े दिनों में गाथा बनकर रह जाते हैं। घर, मकान, धन, दौलत तभी तक हैं, जब तक आंखें खुली हैं। आंख मूंदते ही सब कुछ लुट जाता है। सारे झगड़े खत्म हो जाते हैं। शत्रु-मित्र, अपने-पराये सब खो जाते हैं। रात में सोने के समय बच्चे झगड़ते हैं कि तकिया मैं लूंगा, चादर मैं लूंगा, किन्तु जब गाढ़ी नींद लग जाती है तब बच्चे बिना तकिया-चादर के सोये रहते हैं। उन्हें देखकर सयाने हंसते हैं कि जिनके लिए ये झगड़ रहे थे उनसे अब इन्हें कोई मतलब नहीं रह गया।

ठीक ऐसे ही आदमी संसार से थोड़े दिनों में सदा के लिए सो जाता है और मौत हंसती है। क्योंकि आदमी बच्चों सरीखे थोड़े-थोड़े धन, दौलत, जमीन, मकान, दुकान, पद, प्रतिष्ठा के लिए छल-छद्म, लड़ाई-झगड़ा करता है। दूसरों की संपत्ति हड़पता है। लेकिन एक दिन सब छोड़कर चला जाता है। यहां किसी का अहंकार सदा साथ नहीं देता। सच है—

"सदा न रहा है सदा न रहेगा जमाना किसी का,
नहीं चाहिए दिल दुखाना किसी का।"

दिल दुखाना छोड़िये, दिलरूबा बन जाइए।
आप पत्थर क्यों बने हैं, आईना बन जाइए॥

(अज्ञात)

पूरा संसार राग-द्वेष, मैं-मैं, तू-तू करके अहंकार की आग में जल रहा है। इस आग से वही बचता है जो अपने अहंकार को, विकार को, बंधन को देखता है और गुरुमुख वाणी का आचरण करता है। यथा—

हंता मा सबहीं पड़े, हंता देखे साध।
हंता ते न्यारा रहे, गुरुमुख दृष्टि अबाध॥

(सद्गुरु श्री रामरहस साहेब)

जो अपने अहंकार को देखता है, वह साधक होता है। जो दूसरे के अहंकार, दोष देखता है वह बाधक होता है। अंगुली अपनी ओर उठे 'मैं' कैसा हूं'—यह प्रगति की निशानी है। अंगुली दूसरे की ओर उठे वह कैसा है—यह पतन की निशानी है। एक व्यक्ति नयी कार खरीद कर लाया और पड़ोसी को दिखाकर सड़क पर तेजी से बार-बार ले जाता और ले आता। एक व्यक्ति ने कहा—तुम यह क्या कर रहे हो? बार-बार कार यहीं घुमाते हो। उसने कहा—मैं अपने पड़ोसी को जला रहा हूं। वह व्यक्ति बोला—मूर्ख! पड़ोसी जले या न जले तुम्हारा पेट्रोल तो जल ही रहा है। हमारे अहंकार से दूसरों का मन जले या न जले, वे दुखी हों या न हों; हमारा मन तो जलेगा ही जलेगा, हमारी शांति और शक्ति तो नष्ट होगी ही होगी। अहंकार-ईर्ष्या करना पराजितों का काम है। दूसरों के दोषों पर, गलतियों पर हमारा जहर उबल पड़ता है। जैसे जिस सर्प में जहर होता है वह थोड़ी-सी आहट पाकर फनफना उठता है, किन्तु जिसमें जहर नहीं होता वह सर्प आहट पाने पर शांत रहता है, फनफनाता नहीं है। हम भी प्रतिकूलता पाकर फनफनाएं नहीं किन्तु शांत रहें। बुद्ध पुरुष शांत होते हैं और बुद्धू फनफनाता रहता है। हम बुद्धू नहीं बुद्ध बनें।

अहंकार को गला करके ही हम बुद्ध हो सकते हैं नहीं तो हम बुद्धू ही रहेंगे। जब हम अहंकार छोड़कर विनम्र हो जाते हैं तब मन पवित्र हो जाता है, चित्त शांत हो जाता है और फिर हमारे अन्दर से प्रसन्नता का प्रवाह बहने लगता है। किसी ने कहा है—

अहंकारी के पास में, ज्ञान न करता धाम।
फटी जेब में क्या कभी, टिक सकता है दाम॥

सच तो यह है कि विनम्र व्यक्ति को सब पसंद करते हैं, पास में बैठाना चाहते हैं, उनसे हंस-हंस कर बोलते हैं, अपने दुख-सुख बताते हैं और वे आपस में प्रेम से रहते हैं। किन्तु अहंकारी व्यक्ति को कोई पसंद नहीं करता है। बाहर वाले तो दूर घर वाले ही पसंद नहीं करते। यहां तक पत्नी भी नहीं चाहती है। वह भी

यही चाहती है कि जितने दिन यह घर से बाहर रहे अच्छा है। एक आदमी घर से बाहर जाने लगा तो पत्नी और बच्चों से कहा—मैं तीन दिन में आ जाऊंगा तुम लोग अच्छे से रहना। पत्नी बोली—तीन दिन नहीं, आप 30 दिन में आइएगा। पति बोला—इतने दिन मेरे बिना तुम लोग कैसे रहोगे? पत्नी बोली—आपके बिना हम शांति से रहेंगे। आप रहते हैं तो हम लोगों को घुट-घुट कर जीना पड़ता है। आप हमेशा अहंकार का बुखार चढ़ाये रहते हैं और डांटते-फटकारते रहते हैं। इसलिए आप जितने दिन घर से बाहर रहेंगे अच्छा है। आपके घर में ऐसा नहीं होना चाहिए। आप जब ऑफिस से घर आयें तो बच्चे, पत्नी, माता-पिता से प्रेम से बोलें, हंस-हंस कर बोलें। आप पांच सेकेंड मुस्कुराते हैं तो फोटो सुन्दर आता है यदि हर समय मुस्कुरायेंगे तो जिंदगी सुन्दर हो जायेगी। आपके घर में आनन्द की बहार आ जायेगी। आपके लिए आपका घर ही स्वर्ग बन जायेगा। किंतु यदि आप अहंकारपूर्वक बोलेंगे तो आपके आते ही घर श्मशान हो जायेगा। एक जज अपने मित्र को लेकर घर आया। उसके बच्चे, पत्नी घर के भीतर चले गये। मित्र ने पूछा—क्या बात है आपके आते ही सब लोग कमरे में घुस गये? जज ने कहा—क्या मजाल है कि मेरे सामने कोई बोल दे। मैं सब पर शासन किये रहता हूं। मित्र ने कहा—घर को नरक बनाये रखे हो और रोब गांठते हो। पत्नी हिम्मत करके बाहर आयी, बोली—आप इनको समझा दीजिए कि ये अपना जजपना कचहरी में ही छोड़कर घर आयें। यहां इनकी पत्नी है, बच्चे हैं। हम इनसे प्यार चाहते हैं किन्तु ये हम सबसे कैदी की तरह व्यवहार करते हैं।

ठंडे दिल से सोचिए, यदि आपका व्यवहार ठीक नहीं है तो त्योहार क्या करेगा। "का करे नमाज जबान बाय बिगड़ी।" पूजा, पाठ, तीर्थ, व्रत, नाम-जप और मंदिर क्या करेगा जब आप घर में ही गलत हैं। जब आप वाणी ही गलत बोलते हैं, आपकी भाषा ही गलत है तो भगवान आपको सुखी नहीं कर सकता है। याद रखिए, घर की असफलता बाहर की किसी भी सफलता से पूरी नहीं हो सकती है। अहंकार त्यागकर प्रेम और समता से जीयें तो आप अपने में भी शांत रहेंगे और परिवारवालों को भी आपसे शांति मिलेगी। फिर तो आपके घर में ही स्वर्ग उतर आयेगा—

होता पाठ प्रेम का निश दिन, पूजा है कर्मों की।
सत्य अहिंसा जीवदया ही, शोभा है जिस घर की।
मात पिता और इष्ट देव का, होता हर पल मान है।
प्रेम की गंगा बहे जहाँ पर, वह घर स्वर्ग समान है॥

अतः अहंकार का त्याग करें और प्रेम को जीवन में उतारें। प्रायः लोग कहते हैं कि हमसे कोई प्रेम नहीं करता है, हमें कोई पसंद नहीं करता है, वस्तुतः आपको कोई पसंद करे या न करे, आपसे कोई प्रेम करे या न करे, आप स्वयं को पसंद कीजिए, स्वयं से प्रेम कीजिए तो आपको सब पसंद और प्रेम करने लगेंगे। महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि आप दूसरे को कितना पसंद करते हैं, दूसरे से कितना प्रेम करते हैं। महत्त्वपूर्ण यह है कि आप अपने को कितना पसंद करते हैं, ख़ुद से कितना प्रेम करते हैं। क्या आप ख़ुद को पसंद करते हैं, क्या आप अपने से प्रेम करते हैं? आप अपने आप में ही खिन्न, उदास रहते हैं, दिन में अपने आप से ही कई बार उलझते हैं, अशांत रहते हैं, तो इसका मतलब है कि आप अपने को पसंद नहीं करते, अपने से प्रेम नहीं करते। यदि करते तो खिन्न, अशांत क्यों रहते?

महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि आप कितने दिन जीते हैं, महत्त्वपूर्ण यह है कि आप कैसे जीते हैं। महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि आप दूसरे के साथ कैसे जीते हैं, महत्त्वपूर्ण यह है कि आप ख़ुद के साथ कैसे जीते हैं। क्या आप ख़ुद के साथ जीना जानते हैं? यदि हां, तो फिर दूसरों से विरोध क्यों, कटुतापूर्ण व्यवहार क्यों? इसका मतलब है कि आप ख़ुद के साथ जीना नहीं जानते हैं। जानते तो कटु क्यों बोलते? याद रखिए, बोल से ही व्यक्ति की तोल होती है कि आप कैसे जीते हैं। महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि आप धन कितना कमाते हैं, महत्त्वपूर्ण तो यह है आप खाते कैसे हैं। महत्त्वपूर्ण

यह नहीं है कि आप बच्चों को कितना धन देकर जाते हैं, महत्त्वपूर्ण यह है कि आप बच्चों को कितने अच्छे संस्कार देकर जाते हैं। आपके बच्चे सब कुछ देख रहे हैं। आप जो भी कहते हैं, उसकी अपेक्षा वे इस बात से ज्यादा सीखते हैं, कि आप क्या करते हैं। संसार आपके आचरण के उदाहरण पर चलेगा न कि आपकी सलाह या उपदेश पर। इसलिए वही करो, जो आप सिखाते हैं। आपके आस-पास का संसार आप ही की कार्बन कॉपी है। इसलिए आप ऐसी 'मास्टर कॉपी' बनें कि उसकी 'डुप्लीकेट कॉपी' बनाई जा सके। दरअसल जानना और नहीं करना नहीं जानने के बराबर है। हम पढ़ते तो हैं, गढ़ते नहीं। सुनते तो हैं, सोचते नहीं। बोलते तो हैं, विचारते नहीं। लिखते तो हैं लेकिन जीवन में लाते नहीं तो हमारा सुधार कैसे होगा। जैसा कहें वैसा करें तो हमारा कल्याण अवश्य हो जायेगा। न जानने का दोष हममें नहीं है, न करने का दोष हममें है। हम यह जानते हैं कि अहंकार-क्रोध करने से हमारा स्वयं का नुकसान होता ही है, साथ में रहने वालों पर भी गलत प्रभाव पड़ता है। संबंधों में खटास पैदा होती है।

रात के 12 बजे पति गहरी नींद में सो रहा था। पत्नी गिलास में दूध लेकर गयी और उनके पैर को हिलाते हुए बोली—उठो, दूध पी लो। पति आंख खोला और बोला—देवी! 15 साल हो गये तुमसे शादी किये पर आज तक तुमने एक गिलास पानी नहीं पिलाया। आज कहां से श्रद्धा-प्रेम की गंगा तुम्हारे हृदय में उमड़ आयी जो तुम इतनी रात को दूध पिलाने आयी हो। पत्नी बोली—श्रद्धा-प्रेम की बात छोड़ो। अभी मैं लाइट बुझाने ही जा रही थी कि नजर कैलेन्डर पर पड़ी तो देखती हूं आज नाग पंचमी है। सो इतनी रात को नाग कहां खोजने जाऊं, लो तुम्हीं दूध पी लो। तुम भी तो दिन भर नाग की तरह फुफकारते रहते हो।

आज हमारे परिवार में, समाज में, देश में संबंध बिगड़ चुके हैं क्योंकि हमारे संबोधन खराब हो चुके हैं। मकान तो बनते जा रहे हैं लेकिन घर उजड़ते जा रहे हैं। बाहर तो सब सोना ही सोना है पर भीतर से सब सूना ही सूना है। बाहर सम्पन्न होने पर भी भीतर से विपन्न है। बाहर उजेला होने पर भी भीतर अंधेरा है।

याद रहे, जब भाषा बिगड़ती है तो भावना भी बिगड़ जाती है और जब भावना बिगड़ती है तो भगवान भी बिगड़ जाता है। फिर उसका रक्षक कोई नहीं होता है। अहंकार सबको मार देता है। रावण को राम ने नहीं उसके अहंकार ने मारा। दुर्योधन को उसके अहंकार ने मारा। याद रहे, जब तक रावण नहीं मरेगा तब तक राम को सीता नहीं मिलेगी। ठीक ऐसे ही जब तक अहंकार रूपी रावण नहीं मरेगा तबतक शांति रूपी सीता नहीं मिलेगी। अतः हम अहंकार का त्याग करें। आदमी सब कुछ का त्याग कर देता है किन्तु अहंकार का त्याग नहीं करता है और अहंकार का त्याग किये बिना सारा त्याग व्यर्थ हो जाता है।

एक मूर्तिकार ने अपने जैसी 100 मूर्तियां बनायी। जब उसको यमराज के दूत लेने आया तो उन्हीं मूर्तियों के बीच खड़ा हो गया। दूत पहचान नहीं पाये कि असली कौन है। लौटकर यमराज से कहा। यमराज ने दूत को कुछ युक्ति बताकर फिर भेज दिया। दूत मूर्तियों के पास आया और कहने लगा—मूर्तियां कितनी सुन्दर बनायी है। लगता है बोल देंगी। दूसरा दूत बोला—पर इसमें एक खामी है। यह सुनकर मूर्तिकार बोल पड़ा—क्या खामी है? दूतों ने कहा—असली यही है, पकड़ो-पकड़ो। यही खामी है कि तुमने अहंकार का त्याग नहीं किया।

हम भी यदि अहंकार का त्याग नहीं किये तो संसार के प्राणी-पदार्थों को बटोरते और सुख-सुविधाओं को भोगते जीवन यूं ही बीत जायेगा और जीवन में खामी-खोट बना ही रह जायेगा। अतः हम अहंकार-ममकार को त्यागकर जीवन में सद्गुणों को धारण करें। जीवन को अच्छा बनायें। जीत की भाषा भूल जायें, जीने की भाषा सीखें। शांत मन वाला बनें और शांति से जीवन जियें। इसी में अपना और समाज का कल्याण है। ❑

शंका समाधान

प्रष्टा—बनारसी पंडित, जमुई, बिहार

1. **प्रश्न**—कबीर साहेब ने बीजक में कहा है—'एक शब्द गुरु देव का, ताका अनंत विचार। थाके मुनिजन पंडिता, वेद न पावै पार॥' यह कौन-सा शब्द है और इसका भाव क्या है?

उत्तर—जहां कोई बात संकेत में कही जाती है वहां सर्वमान्य अर्थ करना या उत्तर देना संभव नहीं होता, परन्तु उत्तर युक्तियुक्त होने से वह अधिकतम लोगों को ग्राह्य होता है।

मनुष्य मात्र का उद्देश्य है दुखनिवृत्ति। दुख किसी को पसंद नहीं है। मनुष्य जो कुछ करता है दुख से छुटकारा पाना ही उसका उद्देश्य होता है। इस दुख से छुटकारा पाने को ही अध्यात्म-क्षेत्र में मोक्ष, कैवल्य, निर्वाण, ब्रह्म या ईश्वर साक्षात्कार, ब्रह्म-ईश्वर-प्राप्ति आदि कहा गया है। कबीर साहेब ने उक्त साखी में एक शब्द कहा है, तो वह एक शब्द मोक्ष, कैवल्य या निर्वाण है।

इस मोक्ष-मुक्ति के लिए विभिन्न मत-पंथ-मजहबों के असंख्य ग्रंथों में असंख्य उपाय बताये गये हैं। धार्मिक जगत के नाना संप्रदायों में जितने प्रकार के नाम-जप, पूजा-पाठ, हवन-तर्पण, तप-साधना बताये गये हैं वह इसी मोक्ष-प्राप्ति के लिए है। देवी-देवता, ईश्वर-ब्रह्म आदि की कल्पना भी इसी के लिए की गयी है। यदि मनुष्य के जीवन में दुख न हो, किसी प्रकार की प्रतिकूलता न आये, उसके इच्छानुसार ही सब कुछ होता चला जाये तो वह न तो किसी देवी-देवता, ईश्वर-ब्रह्म की पूजा-उपासना करेगा और न नाम-जप, हवन-तर्पण आदि कुछ करेगा।

मोक्ष ऐसा कुछ नहीं है, जो बाहर से मिलता हो। मोक्ष तो मात्र दुखों से छुटकारा पा जाना है, किन्तु इस तथ्य को न जानने के कारण बड़े-बड़े ज्ञानी, विद्वान, ऋषि-मुनि, महात्मा मोक्ष को बाहर से पाने के लिए भटक रहे हैं। मोक्ष पाने के लिए भटकने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु दुखों के मूल कारण इच्छा, कामना, विषयासक्ति, अज्ञान आदि को दूर करना है।

इस साखी का विस्तृत अर्थ जानने के लिए कबीर संस्थान, इलाहाबाद से प्रकाशित 'बीजक पारख प्रबोधिनी व्याख्या' का दूसरा भाग पढ़ें।

2. **प्रश्न**—एक गीत में कहा गया है—'मन ही देवता, मन ही ईश्वर, मन से बड़ा न कोय।' जबकि मन को मानने वाला और मन से काम लेने वाला जीव मन से बड़ा है, फिर मन को सबसे बड़ा एवं ईश्वर क्यों कहा गया?

उत्तर—उक्त गीत में मन का महत्त्व बताया गया है। यदि मन शुद्ध, निर्मल, निर्विकार, स्ववश, शांत हो जाये तो मन से बड़ा देवता या ईश्वर बाहर कहीं नहीं मिलेगा। बाहर के सारे देवी-देवता, ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा आदि तो मन की मान्यता मात्र है। मनुष्य को अपने कल्याण, सुख-शांति के लिए किसी देवी-देवता, ईश्वर-परमात्मा को खुश नहीं करना है, किन्तु मन को ही शुद्ध, संयत, शांत, स्ववश करना है।

यद्यपि जीव मन को मानने वाला होने से मन से बड़ा है। परन्तु अपने स्वरूप के अज्ञान के कारण मन को अपनी शक्ति-सत्ता दे-देकर वह मन के अधीन हो गया है। विषयों की खुराक पा-पाकर मन बहुत चंचल हो गया है, कभी ठहरता नहीं है, इसलिए लगता है कि मन बहुत बलवान है, परन्तु यह हकीकत नहीं है। हकीकत यह है कि जीव मन से ज्यादा बलवान है, क्योंकि जीव सर्वोपरि सत्ता है।

ऊपर जो कहा गया है कि मन ही देवता, ईश्वर एवं सबसे बड़ा है, वह शुद्ध-संयत मन के लिए कहा गया है, क्योंकि शुद्ध-संयत-स्ववश मन में कोई दुख रह नहीं जाता।

3. **प्रश्न**—अहंकार ही दुख एवं पतन का कारण है, इसे कैसे दूर किया जाये?

उत्तर—अहंकार सदैव जन, धन, पद, प्रतिष्ठा, विद्वता, योग्यता, शारीरिक बल-रूप आदि बाह्य भौतिक

उपलब्धियों का ही होता है, किन्तु कोई भी भौतिक उपलब्धि स्थिर, एकरस रहने वाली नहीं है, क्षणभंगुर परिवर्तनशील एवं विनश्वर है। यदि भौतिक उपलब्धियों के अंतिम परिणाम को देख लिया जाये और किसी भी उपलब्धि से अपने को न जोड़ा जाये तो अहंकार होने का कोई कारण नहीं रह जायेगा।

प्रष्टा—अमृतलाल परमार, जगाना, गुजरात

1. प्रश्न—सभी धर्मग्रंथों में मनुष्य जन्म को दुर्लभ कहा गया है। इसके अनुसार तो कुछ ही जीवों को मनुष्य शरीर मिलना चाहिए था, जबकि आज दुराचरण बढ़ने के बावजूद मनुष्यों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। ऐसा क्यों?

उत्तर—कीड़े-मकोड़ों की अपेक्षा मनुष्यों की संख्या नगण्य ही तो है। पूरी दुनिया में मनुष्यों की जितनी संख्या आज है कीड़े-मकोड़ों की उतनी संख्या किसी एक शहर में या कुछ कि.मी. के दायरे में ही होगी। वैसे मनुष्य शरीर का मिल जाना मात्र पर्याप्त नहीं है, मनुष्यता का होना आवश्यक है। मनुष्यता के अभाव में मनुष्य और पशु में कोई खास फर्क नहीं है। मनुष्य शरीर की विशेषता इसलिए है कि इसमें मानसिक दुखों से छुटकारा पाने के लिए पूरी स्वतंत्रता है। क्योंकि इस शरीर में मन का पूर्ण विकास है।

रही बात आज दुराचरण एवं अधर्म की वृद्धि की, तो हर समय के मनुष्यों की यही शिकायत रही है। अच्छे-बुरे लोग सब समय रहे हैं और सब समय रहेंगे। आज विज्ञान युग होने से प्रचार-तंत्र की बहुलता के कारण नकारात्मक बातों का जल्दी और ज्यादा प्रचार हो जाता है। भौतिकतावादी युग होने के बावजूद आज भी दुर्गुणी-दुराचारियों की अपेक्षा सद्गुणी-सदाचारी ज्यादा हैं।

फिर यह कोई जरूरी नहीं कि जीवों को अपने आज के ही किये हुए कर्मों के अनुसार शरीर धारण करना पड़ता है। पूर्व में किये गये कर्म, जो संचित हैं उनके फल भोग का समय आने पर जीवों को वैसे-वैसे शरीर धारण करने की योग्यता उपस्थित हो जाती है। आज बच्चा पैदा करने वाले जोड़ों की संख्या पूर्व की अपेक्षा ज्यादा बढ़ गयी है, इसलिए जीवों को मनुष्य शरीर धारण करने की योग्यता उपस्थित हो गयी है, अतः मनुष्यों की संख्या बढ़ती जा रही है।

2. प्रश्न—कहते हैं कि समय पूरा होने पर ही शरीर छुटता है, तो क्या हार्ट अटैक या दुर्घटना में मरने वालों का भी समय पूरा हो गया होता है?

उत्तर—हार्ट अटैक, रोग-व्याधि, शरीर की जर्जरता, दुर्घटना, बाढ़, आग लगना, भूकंप, सर्प-बिच्छू का काटना-छेदना या अन्य किसी भी कारण से शरीर छुटता हो, समय पूरा होने पर ही छुटता है। यदि समय पूरा नहीं हुआ था तो शरीर छुटा क्यों। क्या शरीर की कोई एक निश्चित अवधि निर्धारित की जा सकती है, जिसे समय पूरा होना माना जाये। शरीर किसी भी अवस्था में छूटे उसका कोई न कोई बहाना-कारण होता है, और समय पूरा होने पर ही शरीर छुटता है।

अकाल मृत्यु जैसी कोई चीज नहीं है। अकाल मृत्यु कोरी कल्पना है और भूत-प्रेत की कल्पना कर उनके नाम पर पुजाने-खाने वालों द्वारा फैलायी गयी अफवाह है।

जब तक जीयें अपने जीवन निर्वाह के साथ-साथ सेवा, भक्ति, परोपकार, सदाचरण, संयम-संतोष पूर्वक निर्शिचत-निर्भय होकर जीयें। जब समय आयेगा, मौत हो जायेगी, फिर सब चिंता-फिक्र समाप्त हो जायेगी।

—धर्मेन्द्र दास

सबके शरीर में जहर है। साधक अपने शरीर के जहर को मारे और दूसरे के शरीर से यदि जहर उछलकर अपने ऊपर आ जाये तो उसे निर्विकार भाव से सहन करने का पूर्ण प्रयास करे। यही संसार में जीने का तरीका है। अपने जहर को मारना और दूसरे के जहर को सहना ही साधना है। जिनकी यह साधना अखंड रूप से चलती है उसी का बेड़ा पार होता है। ऐसा साधक किसी से उलझता नहीं है। उसकी शक्ति व्यर्थ न जाकर रचनात्मक दिशा में लगती है और वह तिल-तिल करके अपने को शोधता हुआ इसी जीवन में मुक्त हो जाता है। ***-पूज्य गुरुदेव जी***

लाओत्ज़े क्या कहते हैं?

13. ऐश्वर्य और सम्मान का मोह छोड़कर दूसरों को आदर और प्रेम दें

1. *Grace is as shameful as a fright.*
   Honour is a great evil like the persona.
2. *What does this mean : 'Grace is as shameful as a fright'?*
   Grace is something inferior.
   One attains it, and one is as if frightened.
   This is what is meant by 'Grace is as shameful as a fright'.
3. *What does this mean : 'Honour is a great evil like the persona'?*
   The reason I experience great evil is
   that I have a persona.
   If I have no persona :
   What evil could I experience?
4. *Therefore : whosoever honours the world in his persona*
   to him one may entrust the world.
   Whosoever loves the world in his persona
   To him one may hand over the world.

अनुवाद

1. *ऐश्वर्य वैसा ही लज्जाजनक है जैसा कि भय।*
   सम्मान वैसी ही बड़ी बुराई है जैसा कि दिखावा।
2. *इसका क्या अर्थ हुआ,*
   'ऐश्वर्य वैसा ही लज्जाजनक है जैसा कि भय?'
   ऐश्वर्य बिलकुल तुच्छ है।
   यह प्राप्त होता है और पाने वाला भयभीत-सा हो जाता है।
   यही इस कथन का अर्थ है, 'ऐश्वर्य वैसा ही लज्जाजनक है जैसा कि भय।'
3. *इसका क्या अर्थ हुआ,*
   'सम्मान वैसी ही बड़ी बुराई है जैसा कि दिखावा?'
   (उसका छूटना) मैं बुरा महसूस करता हूं,
   इसका कारण है मुझमें अहंकार होना,
   यदि मुझे अहंकार न होता,
   तो मुझे बुरा क्यों लगता?
4. *अतएव,*
   जो संसार को वैसा ही सम्मान देता है जैसा स्वयं को,
   उसको विश्वासपूर्वक संसार सौंपा जा सकता है।
   जो संसार को वैसा ही प्रेम करता है जैसा स्वयं को,
   उसे संसार की सत्ता सौंपी जा सकती है।

भावार्थ—1. ऐश्वर्य वैसा ही लज्जा उत्पन्न करने वाला है जैसा कि भय। सम्मान वैसा ही बड़ा दोष है जैसा कि दिखावा।

2. इसका क्या अर्थ है कि ऐश्वर्य भय की तरह लज्जाजनक है? क्योंकि ऐश्वर्य बिलकुल तुच्छ है। यह प्राप्त होता है और पानेवाला भयभीत हो जाता है।

3. इसका क्या अर्थ है कि सम्मान दिखावा की तरह दोषजनक है? क्योंकि सम्मान का छूटना मुझे बुरा लगता है। इसका हेतु है मुझमें अहंकार होना। यदि मुझमें अहंकार न हो तो सम्मान का छूटना बुरा क्यों लगता?

4. इसलिए जो अपने समान संसार का आदर करता है उसे संसार सौंपा जा सकता है। जो अपने समान संसार को प्रेम देता है उसे सत्ता सौंपी जा सकती है।

भाष्य—ऐश्वर्य वैसा ही लज्जाजनक है जैसा कि भय। इसका क्या अर्थ है? मूल इंगलिश पाठ में है, "Grace is as shameful as a fright." इसका शाब्दिक अर्थ होगा, कृपा वैसी ही लज्जाजनक है जैसा कि भय। यहां कृपा शब्द लाक्षणिक है, जो ऐश्वर्य के लिए है। जब मनुष्य को ऐश्वर्य मिलता है तब वह कहता है कि यह ईश्वर की कृपा है, प्रकृति का वरदान है अथवा गुरु की कृपा है। संत लाओत्ज़े कहते हैं, यह ग्रेस, यह कृपा, यह ऐश्वर्य लज्जाजनक है। वस्तुतः बहुत ऐश्वर्य इकट्ठा होता है बहुतों का अधिकार छीनकर। अतएव वह लज्जाजनक ही है। किंतु सन्निपातग्रस्त अभिमानी मनुष्य लज्जा न कर उसका प्रदर्शन करता है।

एक नेता मिलने आये। उनकी पत्नी उनके साथ थीं। वे कीमती आभूषणों से लदी थीं। उनके घर की संपत्ति साधारण थी। नेता मंत्री हो गये थे। मंत्री के पास धन आता ही है। ऐसे ऐश्वर्य से उन्हें लज्जा नहीं थी, क्योंकि मन इतने नीचे स्तर का था कि लज्जाजनक स्थिति महत्त्वपूर्ण लगती थी।

सारा ऐश्वर्य प्रकृति का है और उसके उपभोक्ता प्राणी मात्र हैं। व्यवहार में उसका बटवारा है। किंतु किसी भी ऐश्वर्य को यदि एक व्यक्ति अपना मानता है और वह अकेला ही उसका भोग करना चाहता है तो यह उसके लिए लज्जाजनक होना चाहिए। किसी भी ऐश्वर्य पर परिवार तथा समाज का अधिकार होना चाहिए, एक व्यक्ति का नहीं। अपितु यह समझना चाहिए कि ऐश्वर्य किसी का नहीं है। यह तो प्रकृति का कार्य है। इसका संवर्द्धन, संरक्षण एवं उपभोग उस समूह को समतापूर्वक करना चाहिए।

ऐश्वर्य भय की भांति लज्जाजनक है। अपने मन के भय को लोग छिपाते हैं। उसे प्रकट करने में लज्जा करते हैं। वैसे ही ऐश्वर्य पर व्यक्तिगत अधिकार जताने में लज्जा करना चाहिए।

ग्रंथकार कहते हैं **ऐश्वर्य लज्जाजनक उसी प्रकार है जिस प्रकार कि भय, इसका क्या अर्थ है?** वे स्वयं उत्तर देते हैं कि **ऐश्वर्य बिलकुल तुच्छ है। यह प्राप्त होता है और पाने वाला भयभीत हो जाता है।** किसी भी लौकिक ऐश्वर्य के छूटने का भय मन पर सवार हो जाता है।

जीवन की सच्ची उपलब्धि है मन का स्वस्थ, प्रसन्न, निर्मल एवं निर्भय रहना। ऐश्वर्य से घिरकर जब मन भयभीत, उद्वेगित, राग-द्वेषपूर्ण एवं मलिन हो गया तो ऐश्वर्य हितकारी कहां हुआ? अतएव जीवन में सच्ची उन्नति चाहने वाले को स्वयं को ऐश्वर्य से नहीं जोड़ना चाहिए। अंततः ऐश्वर्य किसी का है भी नहीं।

सब ऐश्वर्य नास्ति के माहीं।
जाके पीछे जिव बौराहीं॥ पंचग्रंथी॥

इसका क्या अर्थ हुआ, सम्मान वैसी ही बड़ी बुराई है जैसा कि दिखावा। ग्रंथकार उत्तर देते हैं, **उसका छूटना मैं बुरा महसूस करता हूं। इसका कारण है मुझमें अहंकार होना। यदि मुझमें अहंकार न होता तो सम्मान का छूटना बुरा क्यों लगता?**

मनुष्य को चाहे जो कुछ मिले, उसके पास कुछ रहने वाला नहीं है। सारा मिलना क्षणिक है; अतएव उसका छूट जाना पक्का है। मनुष्य मिलने वाली वस्तुओं में अपने को जोड़ लेता है। उनमें अहंता-ममता कर लेता है। इसलिए उनके संभावित वियोग की याद कर भयभीत होता है। यह उसके अहंकार के कारण है।

अपने भौतिक एवं मानसिक गुणों का प्रदर्शन करना, दिखावा करना, अपना ओछापन है। वैसा ही लोगों द्वारा अपने लिए मिले हुए सम्मान को महत्त्व देना ओछापन है। सम्मान देने वाले का मन बदल जाने पर अपमान भी दे सकता है। सम्मान कोई देता है, यह उसका मन है। न हम मिलने वाले सम्मान को रोक सकते हैं और न अपमान को। हम अपने अहंकार को मिटाकर रह सकते हैं; और यदि हमने अपने अहंकार को सर्वथा मिटा लिया, तो बाहर से मिलने वाले सम्मान और अपमान का कोई मूल्य नहीं रह गया।

हमारे जीवन का सच्चा सुख वह है जो केवल हमारे ऊपर ही निर्भर हो। हमारे जीवन का सच्चा सुख है अविचल, निर्भय, शाश्वत शांति। वह हमारे

आत्मसंयम पर निर्भर है। आत्मसंयम स्वावलंबन का विषय है। सद्गुरु कबीर ने कहा है, "सदा रहे सुख संयम अपने, बसुधा आदि कुमारी।"[1] बसुधा-वसु को धारण करनेवाली, धन को धारण करनेवाली पृथ्वी, उसका राजकाज और उसका ऐश्वर्य माया सदा से कुंआरी है, अविवाहिता है। उसे कोई अपने वश में नहीं कर पाया। उससे स्थिर सुख की आशा करना भयंकर धोखा खाना है।

फिर स्थिर सुख का साधन क्या है? 'सदा रहे सुख संयम अपने' अपने पर संयम रखने से सदा सुख है, स्थिर सुख है। पूर्ण आत्मसंयम पूर्ण सुख है।

संत लाओत्ज़े कहते हैं कि ऐश्वर्य और सम्मान के मोह में फंसा मनुष्य मिथ्या अहंकारग्रस्त है। उसे जीवन में दुख उठाना है।

अतएव जो संसार को वैसा ही सम्मान देता है जैसा स्वयं को, उसको विश्वासपूर्वक संसार सौंपा जा सकता है। जो संसार को वैसा ही प्रेम करता है जैसा स्वयं को, उसे संसार की सत्ता सौंपी जा सकती है।

ग्रंथकार कहते हैं कि उच्चतम मनुष्य वह है जो अपने सुख-दुख के समान दूसरे के सुख-दुख को देखता है और दूसरों को सम्मान और प्रेम देता है, उसे संसार एवं सत्ता सौंपी जा सकती है। परिवार, समाज, पार्टी या किसी भी समूह में वही सबका विश्वसनीय होता है जो स्वयं पर संयम रखता है और दूसरों के साथ सुंदर बरताव करता है।

हमें सम्मान और प्रेम मिलते हैं तो वे अच्छे लगते हैं। यदि विवेक है तो हम उनमें राग नहीं करते, उनका अहंकार नहीं करते। इसलिए वे हमारे बंधन के कारण नहीं बनते हैं। वह धन्य है जो अपने मन की तरह अन्य के मन को जानकर उन्हें सम्मान और प्रेम देता है। सरल भाव यह है कि किसी समूह का सच्चा और अच्छा सेवक वही हो सकता है जो दूसरों को सम्मान और प्रेम दे सके।

1. बीजक, शब्द 82।

सन्त कबीर

रचयिता—श्री लखन प्रतापगढ़ी

मनीषी महान कबीर यहाँ,
उपदेश की गंगा बहा के गये।
नर, नारी, भिखारी, शिकारी सभी,
उस पावन नीर नहा के गये।
विद्वान अनेक विवेक बड़े,
उसकी गहराई थहा के गये।
अनुगामी बने अज्ञानी भी जो,
सब सन्त महन्त कहा के गये॥ 1॥

गागर में भर सागर को,
निज दोहे अनेक दिया हमको।
मंत्र अनेक भरे जिसमें वह,
ग्रंथ भी एक दिया हमको।
ईश का रूप दिखा सच में,
पथ मुक्ति क सेत दिया हमको।
अज्ञान मिटा हिय का हमरे,
सुख सागर भेंट किया हमको॥ 2॥

छूत-अछूत व जाति का भेद,
मिटा जग में ये मिशाल बने।
देखे जहाँ आडम्बर को उसके लिए,
मानो ये काल बने।
दीन दुःखी जो मिला पथ में,
उसको वट-वृक्ष विशाल बने।
निज वाणी से प्राणी को सीख दिये,
उनके हित जीवन ढाल बने॥ 3॥

साखी के साथ रमैनी लिखे,
पद निर्गुण भी तो निराला लिखे।
सफेद रहा तो सफेद लिखे,
अरु काला रहा फिर काला लिखे।
बिनु लाग लपेट के बात कहे,
सत्साहित्य भी तो आला लिखे।
प्यासे के खातिर पानी लिखे अरु,
भूखे को एक निवाला लिखे॥ 4॥

कहानी

मकान

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

सेवानिवृत्ति के एक साल बाद जब सोनसाय की पत्नी ने उन्हें अपने लिए अलग मकान बनाने की बात कही तो वे एकदम भौचक्के रह गये। जिन्दगी में कई उतार-चढ़ाव आये, आपस में लड़े-झगड़े भी, मगर एक दूसरे से दूर रहने की बात वे सोच भी नहीं सकते थे। जब भी मनमुटाव हुआ, दो दिन बाद भूलकर फिर एक हो गये, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। अब तो दोनों बस यही कामना करते थे, जब तक सांस है, साथ जीयेंगे और साथ मरेंगे। लेकिन अचानक उसके इस निर्णय से वे सकते में आ गये। कारण पूछने पर बोली, "अब मैं अपना शेष जीवन भक्ति-साधना में व्यतीत करना चाहती हूं। वैसे भी हमें एक न एक दिन बिछुड़ना ही है तो क्यों न अभी से अलग रहना शुरू कर दें?"

सुनकर कुछ क्षण के लिए वे अवाक रह गये। इस अवस्था में जब उन्हें एक दूसरे के सहारे की जरूरत थी, अलग रहने की कल्पना मात्र से ही वे सिहर उठे। उन्होंने अपनी पत्नी को समझाने की बहुत कोशिश की, "सरोजनी, भक्ति-साधना चाहे जितना करो, पर साथ रहने में ही हमारी भलाई है। जीवन निर्वाह में हमें एक-दूसरे की आवश्यकता होगी। मत भूलो, सारा मेला पीछे छूट चुका है। जहां से हमने शुरुआत किया था, अब अंतिम बेला में वहीं आकर खड़े हो गये हैं। यह भी नहीं जानते, कौन कब चला जायेगा।"

किन्तु सरोजनी ने एक नहीं सुना, बोली "यह घर मेरा है। मैं इसे साधना-स्थल बनाऊंगी। सारी उम्र आपकी सेवा करती रही। अब अपना परलोक सुधारना चाहती हूं तो बाधा क्यों बन रहे हैं?"

वे सरोजनी के इस सवाल का जवाब नहीं दे पाये। जानते थे, उनका वियोग अवश्यंभावी है। यही विधि का विधान है और जीवन का अंतिम सत्य भी। और सांसारिक प्राणी-पदार्थों की आसक्ति त्याग कर परमानंद की प्राप्ति ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। इसलिए वह आत्मकल्याण के लिए साधना करना चाहती है तो सर्वथा उचित ही है। सोच कर वे बाहर से खामोश ही बने रहे, मगर भीतर ही भीतर विचलित हो गये। विवश हो अत्यंत कातर स्वर में बोले थे, "मकान बनते तक साथ रहूंगा, फिर चला जाऊंगा।" उसके स्वर में निराशा के साथ दुःख भी था।

"नहीं, मैं अभी से अकेली रहना चाहती हूं। अपने लिए किराये का मकान ढूंढ़ लो। आपके पास रिटायरमेंट के रुपये तो हैं ही, पेंशन भी मिलेगा। मेरे नाम पर जितनी खेती-बाड़ी है, उससे मेरा गुजारा हो जायेगा। आपसे कुछ नहीं मागूंगी।" सरोजनी इस वक्त अप्रत्याशित रूप में निर्मम हो उठी थी।

सरोजनी का फैसला सुनकर वे हक्के-बक्के रह गये। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि उनकी पत्नी को अचानक यह क्या हो गया? वे तो सेवानिवृत्ति के बाद घर-गृहस्थी के सारे झंझटों से मुक्त सुखद-शान्त जीवन की कल्पना करके आनंदित थे। मगर जिंदगी ऐसे करवट लेगी, इसका उन्हें जरा भी अंदेशा नहीं था। अब शेष जीवन कैसे बीतेगा, इस चिन्ता ने उनका सुख-चैन छीन लिया। वे कई दिनों तक अनिर्णय की स्थिति में भटकते रहे। रात सोते तो सरोजनी से जुड़ी खट्टी-मीठी यादें स्मृति-पटल पर उभरने लगतीं और वे उसी में खोये रहते।

जिंदगी कब कैसा रंग दिखायेगी कोई नहीं जानता। कल तक वे यह सोचकर फूले नहीं समाते थे कि उन्हें सरोजनी-जैसी जीवनसंगिनी मिली। ऊंच-नीच हर स्थिति में वह उसके साथ खड़ी रही। कई विपदाएं आयीं पर उसने कभी उफ तक नहीं कहा। उन्हें आज भी याद है, शादी के तीन साल बाद ही एक दुर्घटना में उनके कमर की हड्डी टूट गयी थी और वे कई महीने तक अपाहिज की तरह बिस्तर पर पड़े रहे। दोनों पैर

लगभग सुन्न हो गये थे। उन्हें लगता था कि अब वे फिर कभी अपने पैरों पर खड़े नहीं हो पायेंगे। अपनी विवशता देख कई बार वे रोने लगते। जब वे हर तरफ से निराशा से घिर जाते तब उन्हें महसूस होता, इस जिंदगी से तो मौत अच्छी है। इस विषम स्थिति में सरोजनी उसे दिलासा देती थी, "इस तरह हिम्मत हार जायेंगे तो मैं कहां जाऊंगी? आप जरूर ठीक हो जायेंगे और फिर कभी आंसू मत बहाइये। मैं आपकी आंखों में आंसू नहीं देख सकती। फिर अभी तो आपको अपने बेटे की परवरिश करनी है। उसे पढ़ाना-लिखाना है और उसकी शादी भी करनी है।"

जब भी मौका मिलता वह सोनसाय के पैरों की मालिश करने बैठ जाती। शायद उसकी सेवा और विश्वास का ही नतीजा था कि उसके पैरों में धीरे-धीरे रक्त संचार शुरू हो गया। इस बीच इलाज में काफी खर्च हो जाने के कारण उन्हें आर्थिक तंगी से गुजरना पड़ा। लेकिन उनकी पत्नी के चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं आयी। उसने अपने गहने जेवर बेच दिये पर इलाज में जरा भी ढील नहीं होने दी। इस तरह तीन साल बाद उनमें उठने-बैठने की शक्ति आ गयी। पूरी तरह ठीक होने में उन्हें पांच साल लग गये। सरोजनी की सेवा और समर्पण की वजह से ही वे फिर सामान्य जीवन जीने के काबिल हो सके, यही सोच वे सरोजनी के प्रति पूरी तरह समर्पित थे।

उन दोनों में एक दूसरे के प्रति इतना प्रेम और विश्वास था कि वे कभी अलग होने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। इसी विश्वास की बुनियाद पर उन्होंने जब भी जमीन-जायदाद खरीदी, सरोजनी के नाम पर ही रखा। यहां तक कि मकान बनवाया तो वह भी पत्नी के नाम पर। और आज जब सरोजनी ने उन्हें अपने लिए अलग मकान बनवाने की बात कही तो सोनसाय को एक जबर्दस्त आघात लगा था।

उन्होंने परिचितों, यार-दोस्तों से अपनी समस्या बतायी तो वे भी अचंभित थे। उनकी पत्नी का व्यवहार किसी को समझ नहीं आया। अब तक पुरुषों के द्वारा महिलाओं को घर से निकाले जाने की घटनायें सुनते आये थे लेकिन आज एक महिला अपने बूढ़े पति को घर से बाहर का रास्ता दिखा रही थी, वह भी परलोक सुधार के नाम पर। बहुत सोचने के बाद सोनसाय इस अंतिम बेला में चुपचाप पत्नी की बात मान लेने का निर्णय लेकर घर से निकल गये।

किराये के कमरे में जाकर वे घंटों गुमसुम खामोश बैठे रहे। सब कुछ छिन जाने के एहसास ने उन्हें पत्थर का बना दिया था। उन्होंने इस बदली हुई स्थिति की जानकारी अपने बेटे महेश को दी तो वह भी अपनी पत्नी के साथ दौड़ता हुआ आ पहुंचा। उसने भी सरोजनी से बहुत कहा कि इस अवस्था में अलग रहने का निर्णय किसी के लिए भी उचित नहीं है। मगर सरोजनी नहीं मानी। अंततः वह भी थक-हार कर वापस लौट गया। लौटते वक्त उसने जरूर कहा था, "बाबू जी, आप हमारे साथ रहिये। हमारे क्वार्टर में पर्याप्त जगह है। आपको कोई तकलीफ नहीं होगी।" किन्तु वे राजी नहीं हुए। पत्नी के इस व्यवहार ने उन्हें बुरी तरह तोड़ कर रख दिया था। जिस पत्नी को प्राणों से अधिक प्यार करते थे, जब वही उनसे विमुख हो गयी तब वे किस पर भरोसा करे?

कुछ दिनों तक वे होटल में खाते रहे। फिर जब ऊब गये तो खुद ही बनाने लगे। मगर कभी चावल अधपका रह जाता तो कभी गीला हो जाता। आड़ी तिरछी ही सही रोटी फिर भी बन जाती थी। सब्जी में भी कभी नमक कम हो जाता तो कभी ज्यादा। दाल तो गलती ही नहीं थी। फिर भी खुश हो जाते और स्वाद लेकर खाते, चलो कोई बात नहीं, आज नहीं तो कल जरूर गलेगी। खाना बनाना तो ठीक था। घर की साफ-सफाई और बर्तन धोना-मांजना उन्हें भारी लगने लगा। ढूँढ़े तो घर में काम करने वाली बाई भी मिल गयी। फिर भी सरोजनी को याद करके वे व्याकुल हो जाते। अब तो वे थे और उनका अकेलापन था। फिर उन्होंने सोचा कि स्वयं का मकान बना लेना ही उचित है, अन्यथा यहां-वहां भटकना पड़ेगा। अब उनका सारा ध्यान मकान निर्माण पर केन्द्रित हो गया। लेकिन मकान कहां बनायें? उनके पास पहले से खरीदा हुआ कोई प्लाट तो था नहीं।

बहुत भाग-दौड़ करने पर मसानगंज के पास एक प्लाट का पता चला। उन्होंने तत्काल सौदा किया और एक लाख एडवांस भी दे दिया। तीन दिन बाद पता चला कि उस पर विवाद चल रहा है। विक्रेता के छोटे भाई की नीयत खराब है और वह उस जमीन को हड़पना चाहता है। सुनते ही सोनसाय के हाथ-पैर फूल गये। उन्होंने अपना एडवांस वापस मांगा तो जमीन वाले ने राशि लौटाने से इंकार कर दिया। रात में पंचायत बैठी तो उसका छोटा भाई एक लाख लेकर अपना दावा छोड़ने को राजी हो गया। उस प्लाट की रजिस्ट्री और परमाणीकरण होते तक रात दिन भाग-दौड़ करने में ही उनकी हालत खराब हो गई। फिर भी वे खुश थे कि उन्हें मकान बनाने के लिए जगह तो मिल गई। परती होते हुए भी वह जमीन पटवारी नक्शा में कृषि भूमि के रूप में चिह्नित थी। अतः मकान निर्माण के पूर्व उसे आवासीय भूमि में परिवर्तित कराना आवश्यक था। सरकारी दफ्तरों के दांव-पेंच से बचने के लिए उन्होंने वकील के मार्फत इंजीनियर से नक्शा बनवाया और पटवारी से नजरी नक्शा लेकर निर्धारित फार्म में अनुविभागीय अधिकारी राजस्व के पास आवेदन जमा कर दिया।

वहां से तत्काल इश्तिहार जारी हो गया और किसी ने कोई आपत्ति नहीं की तो उन्होंने राहत की सांस ली। लेकिन जब नंगर पंचायत से अभिमत मांगा गया तो संबंधित कर्मचारी कागज आलमारी में डाल कर चुपचाप बैठ गया। जब पूछताछ की गई तो बहुत टाल-मटोल के बाद पंचनामा तैयार करने को राजी हुआ और फिर ले दे कर अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी हो पाया। इस प्रक्रिया को पूरी करते छह महीना से ज्यादा गुजर गया। अब नगर निवेश कार्यालय की बारी थी। चूंकि वर्तमान में उनका जिला नया था, नगर निवेश का दफ्तर सप्ताह में एक दिन ही लगता था। बाकी दिन लोगों को अपने कार्य के लिए दुर्ग जाना पड़ता, फिर भी काम हो जाये तो गनीमत समझो। वे वकील को लेकर भरी बरसात में दुर्ग तक दौड़े लेकिन स्थल निरीक्षण के नाम पर कोई कार्यवाही नहीं हुई। जब भी संपर्क किया गया उनका एक ही जवाब था कि उनके पास समय नहीं है। फिर विधान सभा का चुनाव आ गया और मामला पूरी तरह लटक गया।

चुनाव हो जाने के बाद फिर संपर्क किया गया तो पता चला कि उन्होंने आपत्ति लगा दी है। नजरी नक्शा में पटवारी ने पहुंच मार्ग नहीं दर्शाया है। जवाब प्रस्तुत करने के बाद फिर संपर्क किया गया। लेकिन उनके पास इसके लिए वक्त ही नहीं था। आखिर थककर वे चुपचाप बैठ गये। उन्हें लगता था कि इस जन्म में वे नगर निवेश से नक्शा पास नहीं करा पायेंगे। न जमीन का डायवर्सन हो पायेगा, न वे मकान बनवा सकेंगे। इसी बीच लोकसभा का चुनाव आ गया। उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था कि अब क्या करें? कुछ लोग कहते थे कि मकान बनाना शुरू कर दो, अधिक-से-अधिक फाइन लेंगे और क्या होगा? कुछ का कहना था कि नगर पंचायत स्टे लगा देगा तो सब किया-धरा चौपट हो जायेगा और आप परेशान हो जायेंगे। मकान बनवा भी लिया तो नगर पंचायत आपको अनापत्ति प्रमाण पत्र नहीं देगा फिर आपको न बिजली मिलेगी, न पानी, तब क्या करेंगे? इस तरह एक साल से ज्यादा बीत गया और वे डायवर्सन के नाम से त्रस्त हो गये।

जब तक शासकीय सेवा में रहे सोचा करते थे कि सेवानिवृत्ति के बाद वे एकदम निश्चिंत होकर जीयेंगे। लेकिन दुनियादारी के दांव-पेंच में उलझी इस जलालत भरी जिंदगी ने उन्हें पूरी तरह तोड़कर रख दिया था। और वे जिंदगी को बोझ की तरह ढो रहे थे। सुबह उठकर मन होता तो थोड़ी देर इधर-उधर टहल लेते, नहीं तो बड़ी देर तक अलसाये-से बिस्तर में ही पड़े रहते। घर में थे तो सरोजनी उन्हें देर तक सोने नहीं देती थी। चाय-पानी लाकर सामने खड़ी हो जाती और उन्हें विवश होकर उठना पड़ता। अब काम वाली बाई आती है तब वह चाय बना देती है। फिर उसके चले जाने के बाद तैयार होकर वे होटल में नास्ता कर आते हैं। दोपहर का बनाया खाना रात के लिए भी बचा लेते हैं और इस तरह उन्हें सरोजनी की याद आ जाती और वे तड़फ कर रह जाते।

सोनसाय की तरह यहां कई दुखियारे थे जिनके लिए वक्त काटना मुश्किल होता था। वे रोज शाम को बस स्टैण्ड में इकट्ठे होते और अपने-अपने दुखों की पोटली खोल कर बैठ जाते। ऐसा कोई नहीं होता जो यह कहे कि मैं बहुत आराम से सुखी जीवन जी रहा हूँ। हर एक की अपनी समस्या थी। किसी को बहू से परेशानी थी तो कोई अपने बिगड़ैल शराबी लड़के के व्यवहार से दुखी था। ज्यादातर लोग परिवार वालों की उपेक्षा से नाखुश थे। शारीरिक व्याधि से सभी ग्रस्त थे। जो थोड़ा स्वस्थ थे उन्हें एकाकीपन और निष्क्रियता ने जकड़ लिया था। साधन की कमी और अस्वस्थता के कारण न कुछ कर सकते थे, न कहीं जा सकते थे। चुनाव से पहले शासन की ओर से तीर्थयात्रा कर आये सोनसाय अब स्वयं के मकान बनाने के लिए जद्दोजहद कर रहे थे। लेकिन उन्हें कोई मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था। इस हताशा में वे कई बार सोचते, जैसे उनके साथ गया एक व्यक्ति तीर्थस्थल में ही खो गया था, वैसे ही वे भी कहीं खो गये होते तो आज वे इस कदर मारे-मारे न फिरते।

पत्नी से अलग होकर वे शारीरिक और मानसिक रूप से पूरी तरह टूट गये थे। बार-बार यही सोचते कि पत्नी के नाम मकान बनवा कर क्या उन्होंने गलती कर ली? उन्हें आज भी याद है, जब वे सरोजनी के नाम पर मकान बनवा रहे थे तब उनके मित्र ने मना किया था, "मकान तुम्हें अपने स्वयं के नाम पर रखना चाहिए। कल क्या होगा, कोई नहीं जानता। मैं एक ऐसे बड़े बाबू को जानता हूं, जिन्होंने अपनी अधिकांश संपत्ति पत्नी के नाम पर खरीदा था। उसे भी अपनी पत्नी के ऊपर अत्यधिक विश्वास था। सोचता था, चाहे पत्नी के नाम पर रहे या उसके, क्या फर्क पड़ता है? मगर दुर्भाग्य, एक दिन उसकी पत्नी उसके विश्वास को तोड़कर दूसरे मर्द के साथ भाग गयी। बड़े बाबू यह सदमा बर्दाश्त नहीं कर सके और अपने गले में फांसी का फंदा डाल कर झूल गये। मैं यह नहीं कह रहा कि तुम्हारी पत्नी भी ऐसा ही करेगी। यह संसार है मित्र, और मानव मन का थाह पाना असंभव है।"

उन्होंने अपने मित्र की सलाह को पूरी तरह खारिज कर दिया था, "मेरी पत्नी मेरे बिना एक पल भी नहीं रह सकती, यह मैं अच्छी तरह जानता हूं। मरते दम तक हम दोनों साथ रहेंगे।" लेकिन आज उनका विश्वास पूरी तरह टूट कर बिखर गया था। काश, उन्होंने उस दिन अपने मित्र की बात मान ली होती। मगर वक्त हाथ से निकल चुका था। कई बार सोचते, चलो अच्छा ही हुआ, कम-से-कम यह भ्रम तो टूटा कि पत्नी मुझे बहुत प्यार करती है और वह मेरे बगैर जी नहीं सकती। साधु-संत ठीक ही कहते हैं, कि यहां कोई किसी का नहीं। सब स्वार्थ के साथी हैं। फिर भी सरोजनी के साथ गुजारे पलों को याद करके वे हमेशा टूटते-तड़फते थे। उन्हें अब भी यकीन नहीं होता था कि उनकी पत्नी इतनी स्वार्थी और खुदगर्ज हो सकती है?

उन्हें उम्मीद थी कि साल भर में वे रहने लायक दो-तीन कमरा बनवा ही लेंगे लेकिन आज भी वे वहीं के वहीं खड़े थे। उनकी परेशानी देख वकील ने सलाह दी कि वे मकान बनवाना शुरू कर दें, जो होगा, देखा जायेगा। इसी बीच जिस घर में रहते थे उसे भी मकान मालिक ने तोड़कर नया बनाने की तैयारी शुरू कर दी तो उन्हें वह मकान भी खाली करना पड़ा। भाग-दौड़ करके दूसरा मकान ढूंढ़ा और वहां चले गये। यहीं उनकी मुलाकात एक ठेकेदार से हुई जो उनके लिए मकान बनाने को तैयार हो गया। उसने पहले ही कह दिया कि डायवर्सन नहीं होने के कारण कोई अड़चन आती है तो उसकी जवाबदारी नहीं होगी। मरता क्या न करता, वाली स्थिति थी, अतः वे राजी हो गये।

ले आउट के बाद नींव खुदाई शुरू हो गयी। साथ-साथ मकान निर्माण में लगने वाले मटेरियल्स इकट्ठे किये जाने लगे। ईंट, पत्थर, लोहा, सीमेंट, रेत, दरवाजा-खिड़की के चौखट, इन सबकी खरीदारी में कई लाख खर्च हो गये। फिर नींव भरने का काम शुरू हुआ। वे दिन भर वहीं डटे रहते। प्लिंथ के बाद कमरों की दीवारें खड़ी होने लगीं। वे यह सब देखकर बहुत खुश थे कि उनका मकान तैयार हो रहा है और उन्हें अब यहां-वहां भटकना नहीं पड़ेगा। धीरे-धीरे मकान का पूरा ढांचा खड़ा हो गया। अब छत ढलाई के लिए सेंटरिंग करके छड़ बांधने की तैयारी हो रही थी। इसी

समय उन्हें नगर पंचायत से स्टे आर्डर थमा दिया गया कि आगामी आदेश तक तत्काल काम बंद कर दें अन्यथा आपके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जावेगी।

आखिर वही हुआ जिसका डर था। कुछ देर के लिए वे किंकर्तव्यविमूढ़ खड़े रहे फिर विवश होकर उन्हें काम बंद करना पड़ा। ठेकेदार अब तक किये कार्यों का हिसाब लेकर चला गया। कई लाख खर्च करके भी सोनसाय बेघर, असहाय खड़े थे। जब वे नगर पंचायत गये तो मालूम पड़ा कि डायवर्सन होने के बाद ही आपको मकान निर्माण की अनुमति दी जायेगी। और जब तक नगर निवेश से नक्शा पास नहीं होता डायवर्सन नहीं हो सकता। इतना सुनते ही सोनसाय आगबबूला हो गये, "तो क्या यह मेरी गलती है। दो साल से ज्यादा हो गये आवेदन दिये। उनकी आपत्ति का निराकरण भी हो गया। अब क्या करूं? मैं अपनी ही जमीन पर मकान नहीं बना सकता। कैसा कानून है यह? लगता है लोगों को परेशान करने के लिए ही सरकार ने इन विभागों को खोल रखा है।" क्रोध से वे कांपने लगे।

सोनसाय हार्ट पेशेंट हैं और उन्हें एक अटैक आ चुका है, यह वकील जानता था। उन्होंने सोनसाय को किसी तरह शांत कराया और वे दोनों दफ्तर से बाहर निकल आये। घर जाकर सोनसाय लगभग रो पड़े। सरकारी तंत्र कितना निष्ठुर और निर्मम है! एक असहाय, बूढ़े व्यक्ति के ऊपर भी उनका दिल नहीं पसीजता। धीरे-धीरे वे निराशा के गर्त में डूबते चले गये। अब उन्हें पक्का विश्वास हो गया कि वे जीते जी अपने लिए मकान नहीं बनवा सकते। आज वे अपने को एकदम अकेला और असहाय महसूस कर रहे थे। बेमन से दोपहर का बचा खाना खाया और बिस्तर पर लुढ़क गये।

जीवन में पहली बार वे इस कदर हताश और दुखी हुए थे। उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था कि अब क्या करें? हताशा और दुख के बाद भी वे धीरे-धीरे नींद के आगोश में समा गये। और उनकी अधूरी दमित इच्छायें मूर्तमान होकर सपनों में तैरने लगीं। उन्होंने देखा, उनका मकान बनकर तैयार हो गया है। चाकलेटी कलर के टाइल्स लगे फर्श चकाचक चमक रहे हैं। दरवाजा-खिड़की के पल्लों पर पीला रंग पोता गया है जिससे मकान की सुन्दरता और भी बढ़ गई है। हल्के नीले रंग में पुते दीवालों की खूबसूरती देख वे मंत्र-मुग्ध हो गये हैं। पिछवाड़े की खाली जगह पर कई फलदार पेड़ लगे हुए हैं जो हवा के झोंकों के साथ झूम रहे हैं। और सामने आंगन में मोंगरा महक रहा है। ऊपर आकाश में कारे-कजरारे बादल उमड़-घुमड़ रहे हैं और मनभावन सावन झूम-झूम कर बरस रहा है। वे वहीं आंगन से लगे बरामदे में अपने पोता के संग निश्चिंत हंसते-खिलखिलाते झूला झूल रहे हैं। और उनकी पत्नी सरोजनी मंद-मंद मुस्कुराती उन्हें निहार रही है।

फिर दृश्य बदल गया और वे सरोजनी को अपने से दूर जाते हुए देख रहे हैं। वे उसे रुकने के लिए बार-बार पुकारते हैं, किन्तु वह निरंतर आगे बढ़ती चली जाती है, तब वे खीझ उठते हैं, "जा, चली जा, अब कभी मत आना मेरे पास। तुम क्या समझती हो, तुम्हारे बिना मैं मर जाऊंगा। नहीं, मैं तुम्हारे बगैर भी जी सकता हूं।" वे तैश में आ जाते हैं और लौटकर धड़ाम से दरवाजा बंद कर लेते हैं। और इसी के साथ उनकी नींद खुल जाती है।

जब नींद की खुमारी टूटी तो उन्हें समझ आया कि वे स्वप्न देख रहे थे और अभी अपने किराये के कमरे में सोये हुए हैं। सपने को याद करके वे सोचने लगे, सचमुच अब तक व्यर्थ ही पत्नी की आसक्ति में डूबे दुखी होते रहे। जब वह अकेली रह सकती है तब वे क्यों नहीं रह सकते? और सरकारी अव्यवस्था का खामियाजा वे क्यों भुगते? वे अपना मकान जरूर बनायेंगे, इसके लिए चाहे जिससे भी लड़ना पड़े, लड़ेंगे। देखेंगे कौन क्या करता है? अब वे अपना शेष जीवन रोते-धोते नहीं, पूरा जिंदादिली के साथ बितायेंगे। दृढ़ निश्चय करते हुए वे बिस्तर से उठकर कमरे से बाहर निकल आये। और इसी के साथ अनायास ही उनका मन हल्का हो गया। उन्होंने देखा अंधकार पूरी तरह छंट चुका है और पूर्व दिशा में बादलों की ओट से झांकता सूरज मुस्कुरा रहा है।

परमार्थ पथ

सद्‌गुरु ज्ञान ठिकाना है

याद रखो, तुम्हें जो कुछ प्राप्त है वह कुछ नहीं रहेगा। न प्रेमी रहेंगे और न विरोधी रहेंगे। तुम्हारा प्रचार भी नहीं रहेगा। तुम लोक का मंगल करते हो, यह भ्रम भी छोड़ो। तुम अपना मंगल करो। सबसे सिमट जाओ। दूसरों के राग और द्वेष को मत सोचो। अपने कल्याण की बात सोचो। हर क्षण अपने मन को समेटकर अंतर्मुख रहो। गहरी शांति में हरक्षण डूबे रहना तुम्हारे जीवन की सफलता है। यह तभी होगी जब सब तरफ से सिमिटकर अपने मन को ही रगड़ोगे। 'तुझे बिरानी क्या परी, तू अपनी आप निबेर।' कोई कैसा है, इससे तुम्हें क्या मतलब!

* * *

हम सड़े मुरदे शरीर को लेकर घूम रहे हैं। इसका क्या अभिमान करना है? अपनी असंगता का अनुभव निरंतर करना चाहिए। सारा संगम तथा झमेला क्षणिक है। इसलिए संबंध में जितनी अनुकूलताएं और प्रतिकूलताएं मिलती हैं उन्हें सपने के समान समझकर उनसे सदैव उदास रहना चाहिए। जो वर्तमान के संबंध पर विजय नहीं कर सकता, वह शांति नहीं पा सकता। वर्तमान को जीत लेने वाला भूत-भविष्य को जीत लेता है। वर्तमान का संबंध अगले क्षण नहीं रह जायेगा, इसलिए वर्तमान में क्षोभ-रहित रहना चाहिए। सब समय जड़-दृश्य से उपराम रहना साधक की मुख्य साधना है। जो रहता नहीं है, उसमें क्यों पचना? अपना स्वरूप नित्य निर्मल, असंग, केवल और परम आनंद धाम है।

* * *

समस्या नाम की कोई चीज नहीं है, सब घटनाएं हैं। मन के प्रतिकूल घटनाएं समस्या लगती हैं। मनुष्य का कर्तव्य यही है कि वह दुर्जन स्वभाव के मनुष्यों से अपने को दूर रखे। नादान मित्र से भी दूर रहे, अच्छे स्वभाव तथा त्यागभाव और समता-शील स्वभाव के लोगों से ही व्यवहार रखे और हर समय सब तरफ से आये हुए द्वन्द्वों को धैर्य धरकर सहने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ रहे। सुख से जीने का तरीका है पृथ्वी के समान सहनशील रहना। अंततः कुछ रह नहीं जाता है। न प्राणी रहते हैं, न पदार्थ रहते हैं और न परिस्थितियां रहती हैं। सब समय शेष रहता हूं मैं। अतएव किसी बात को लेकर मैं को पीड़ित न करे। सहनशील पीड़ित नहीं होता।

* * *

धन, जन, पद, प्रतिष्ठा सब कुछ मिलकर छूट जाता है। शरीर-निर्वाह तो पशु, पक्षी तथा कृमि-कीटादि का भी होता है। वस्तुतः हमें चाहिए कैवल्य जो स्थिर एवं शाश्वत है। मिलने वाली वस्तुएं छूट जाती हैं। कैवल्य मेरा स्वरूप ही है। सबकुछ छूट जाने के बाद जो शेष रहता है वह स्वस्वरूप चेतन है। वह केवल है। जीवनपर्यंत उसके भाव में रहना कैवल्य की प्राप्ति है, जो शाश्वत है।

* * *

जिन्होंने हमारा अपमान किया, हमें गाली दी, हमारा तिरस्कार किया, हमें भरे समाज में अपमानित किया, हमें मारा, हमारी वस्तुएं छीन लीं; वे न हमारे शत्रु हैं, न हमारी हानि करने वाले हैं और न हमारे लिए समस्या हैं। हमारे घोर शत्रु, हानिकारक तथा हमारी समस्या तो हमारे मन के काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि हैं। अतएव हमें अपने विरोधियों की प्रतिक्रिया में थोड़ा भी सोचना नहीं चाहिए। सब समय अपने मन के विकारों को नष्ट करने में लगा रहना चाहिए। मनुष्यों से सावधान रहना चाहिए। जो खुराफाती, षड्यंत्रकारी तथा उत्पात रचने वाले हैं, उनसे दूर रहना चाहिए। कुसंग का त्याग आवश्यक है, परंतु किसी से मोह और वैर करने की आवश्यकता नहीं है। मोह-वैर से पार ही जीवन्मुक्ति है।

* * *

जो साधक समय-समय से निर्विकल्प समाधि में अविचल-भाव से स्थित होता है और शेष समय में प्रपंच-शून्यता को देखता है और हर समय देह के अंत तथा अपनी अनंतता को देखता है। वह सदैव मुक्त ही है। उसे अपने मोक्ष के लिए साथ के लोगों से तथा बाहरी लोगों से सम्मति लेने की आवश्यकता नहीं है। स्वानुभूत मोक्ष के विषय में जनमत का कोई अर्थ नहीं होता। आज तक किसी जीवन्मुक्त के लिए सर्वसम्मति से स्वीकृति नहीं हुई है चाहे वे कपिल, महावीर, बुद्ध, शंकर, कबीर कोई हों। दूसरे की सम्मति और स्वीकृति की उसमें आवश्यकता नहीं होती। वह तो स्वसंवेद्य है। वासना त्यागकर जो मुक्त हो गया, वह कृतार्थ हो गया। उसमें दूसरे का संबंध ही नहीं है।

* * *

यह कूड़ा-कचड़ा शरीर, फोड़ा-फुंसी का घर, रोगों का उत्पादन-स्थल, राग-द्वेष से उद्वेगित हर क्षण क्षीण होने वाला है। इसकी अहंता-ममता सर्वथा त्यागकर सदैव कैवल्य-स्थिति में रहना जीवन का फल है। कहीं कुछ सार नहीं दिखता है, केवल स्वरूपस्थिति ही सार है। ये पानी के बुलबुले प्राणी क्षण-क्षण बदल रहे हैं, पदार्थ बदल रहे हैं। जहां संसार की हर निर्मित वस्तु काल-चक्की में निरन्तर पीसी जा रही है, वहां किस वस्तु में स्थायित्व खोजते हो? स्थायी तो तुम स्वयं हो। सारे जड़-दृश्यों को सब समय छोड़कर अपने आप में मग्न रहो।

* * *

संसार की किसी वस्तु में आकर्षित होना घोर अविवेक है; क्योंकि हर वस्तु निर्मित है और जो निर्मित है वह विनश्वर है, जो विनश्वर है उसका साथ कैसा। 'पर' में आकर्षित होना 'स्व' का पतन है। 'स्व' का पतन दुख है। अतएव अखंड सुख को चाहने वालों को कहीं भी आकर्षित नहीं होना चाहिए। भूख लगने पर थोड़ा खाना मिल जाये, तन ढंकने के लिए थोड़े कपड़े और सोने के लिए थोड़ी जगह; इसके साथ मन पूर्ण आत्मसंतुष्ट हो, फिर इसके बाद कुछ नहीं चाहिए। खाना, कपड़े और निवास मिलते रहेंगे, पूर्ण आत्मसंतुष्टि का अभ्यास-साधना का काम है। इसे तत्परतापूर्वक करना चाहिए।

* * *

यदि हम आज को एक सप्ताह के बाद की दृष्टि से देखें, तो मन मुक्त रहेगा। यदि आज को दस वर्ष के बाद की दृष्टि से देखें, तो और ही विलक्षण शांति का अनुभव होगा। और यदि आज को सौ वर्ष बाद की दृष्टि से देखें, तो पूर्ण प्रपंचशून्य की स्थिति का बोध होगा। जो वर्तमान में रहता है वह भविष्य में खिसक जाता है। कोई भी जड़-दृश्य स्थिर नहीं है। सारा संबंध ही भागा जा रहा है; फिर किस वस्तु की स्पृहा की जाये। सारी कामनाएं छोड़कर आत्मसंतोष में जीना जीवन की सार्थकता है। कालचक्र सदैव अबाध गति से चल रहा है। सारे प्राणी-पदार्थ उसी के चक्के में फंसे नाच और पिस रहे हैं।

* * *

बनना-बिगड़ना संसार का स्वभाव है। तुम स्वयं को उसमें मत जोड़ो, अपितु हर क्षण स्वयं को सबसे उदासीन एवं तटस्थ रखो। आत्मा स्वभाव से शांत मात्र है, किंतु देह-संबंध में द्रष्टा है। देह-संबंध में ही बंधन अथवा मोक्ष के काम बनते हैं। जब जीव जड़-दृश्य में अपना तादात्म्य कर लेता है, तब बंध जाता है और जब द्रष्टा रहता है तब मुक्ति-पथ में रहता है। अतः सब समय स्वयं को द्रष्टा की स्थिति में रखना चाहिए। संसार का कोई भी दृश्य जीव के साथ रहने वाला नहीं है; अतएव सब समय द्रष्टाभाव में जीवन व्यतीत करना चाहिए। जब अपनी मानी गयी देह अपने साथ नहीं रहती, तब किस वस्तु से अपने को जोड़कर धोखा खाया जाये। मेरा महा धन चेतन तत्त्व आत्मा है। उसी के विचार में डूबे रहना चाहिए।

प्रवचन

सद्गुरु का महत्त्व

(परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा, कबीर मंदिर, प्रीतमनगर, इलाहाबाद में गुरुपूर्णिमा पर दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति—रामकेश्वर जी)

(गतांक से आगे)

अहंकार रखकर कोई कुछ ले नहीं सकता। "राखि जीव अभिमान, केतिक भोंदू बहि गये" यह बात साहेब कहते हैं। साहेब जब कोई बात कहते हैं तो इतना बेदर्द होकर कहते हैं कि आदमी के हृदय में एक हलचल पैदा हो जाती है। अहंकार करके कि मैं बड़ा हूं कोई बोध कैसे पायेगा। जब वह अपना सिर झुकाये, विनम्र बने तभी कुछ पा सकेगा। साहेब ने कहा है—

चली जात देखी एक नारी, तर गागर ऊपर पनिहारी।

बीजक की तिहत्तरवीं रमैनी की यह पंक्ति है। इसमें मुख्य बात यह है कि घड़ा नीचे है और पनिहारी ऊपर। हम पानी पीना चाहें तो अपना हाथ जब नीचे करेंगे तब पानी पी सकते हैं लेकिन हम अपना हाथ पनिहारी के ऊपर रखना चाहते हैं तब हमें पीने को पानी कैसे मिल सकता है। हमें अपना हाथ नीचे करना होगा अर्थात विनम्र होना होगा तभी हमें कुछ मिल सकता है।

बिना विनम्रता के, बिना अपने अहंकार को मिटाये हम कुछ ले नहीं पाते हैं। राम ने लक्ष्मण को भेजा कि जाओ, रावण से कुछ नीति की बात सीख आओ।

लक्ष्मणजी नीति की बात सीखने रावण के पास गये और जाकर रावण के सिर की तरफ तनकर खड़े हुए। रावण ने उनको कुछ नहीं बताया। लक्ष्मण लौटकर राम के पास आये तो राम ने पूछा कि रावण ने तुम्हें क्या नीति बताई?

लक्ष्मणजी ने कहा—भैया, उसने तो मुझे कुछ भी नहीं बताया। तब राम ने पूछा कि तुम उनके पास गये तो कैसे व्यवहार किये। लक्ष्मण ने बताया कि मैं गया और रावण के सिर के पास खड़ा हुआ और नीति की बात बताने के लिए कहा, लेकिन उसने कोई बात ही नहीं बतायी।

राम ने लक्ष्मण को समझाया और कहा—"लक्ष्मण, जब तुम रावण से नीति की बात पूछने गये थे तो तुम्हें शिष्य की तरह विनम्र होकर पूछना चाहिए था। तुम तो उनके सिर की तरफ खड़े हुए। इसमें तुम्हारा अहंकार सिद्ध हो गया और अहंकारी आदमी को कोई ज्ञान की बात कैसे बतायेगा।" बात लक्ष्मण की समझ में आयी और फिर वे रावण के पास गये और शिष्य की भांति विनम्र होकर उनसे नीति की बात पूछे। कहते हैं कि तब रावण ने लक्ष्मण को नीति की बात बतायी कि अच्छा कार्य जो आज करना है उसे कल पर मत टालो, उसे आज ही कर डालो और अहंकार सब दुर्गुणों का पिता है। इससे बचकर रहना चाहिए। यह कहानी है और बात को समझाने के लिए कही गयी है। इसका तात्पर्य यह है कि यह हमारा अहंकार है कि हम कहीं अपना सिर झुकाना नहीं चाहते। हमें अपने अहंकार का विसर्जन करना होगा क्योंकि इसी से हमारा कल्याण होगा।

मैं कह रहा था कि जीवन में गुरु पदे-पदे हैं। जिनसे हम बहुत कुछ सीखते हैं और बहुत कुछ पाते हैं लेकिन अंततः जहां से भवव्याधि दूर होती है, जहां से जीवन में निर्भयता आती है, वही सद्गुरु है। उस सद्गुरु के सम्पर्क में आकर विनयी बनकर अगर उनसे हम सीखते और आचरण ग्रहण करते हैं तो हम भी वैसे हो जायेंगे।

कबीर साहेब ने गुरु की महत्ता को समझाने के लिए पारस पत्थर से गुरु की तुलना की है, पारस पत्थर लोहा को केवल सोना बनाता है अपने समान अर्थात

पारस नहीं बनाता लेकिन सद्गुरु शिष्य को गुरु बनाता है। वह शिष्य को शिष्य नहीं बनाता है गुरु बनाता है, अपने समान बना देता है।

शिष्य तो हम अपनी तरफ से बनते हैं लेकिन सद्गुरु शिष्य नहीं बनाता किंतु गुरु बनाता है। गुरु बनाने का मतलब है शुद्ध करता है, ठोस करता है। गुरु बनाने का मतलब है श्रेष्ठ बनाना, निर्मल बनाना। अब यह बात अलग है कि जो कोई गुरु के पास अपने सुधार के लिए, कल्याण के लिए जाता है उसे विनम्र तो होना ही चाहिए। इसलिए वह आदमी अपनी तरफ से गुरु का शिष्य बनता है। वह विनयी होता है—

गुरु शिष्य पारख कहलाये, दोऊ देह जब दूरि बहाये॥
पारख में एक होइ जाई, शिष्य भाव न रहे गुरुआई॥
देह भाव से दास कहावै, पारख भाव से एक होय जावै॥

यह श्री पूरण साहेब ने कहा है जो कबीरपंथ की पारखी परम्परा में एक महान संत हुए हैं। उन्होंने कहा है कि ज्ञान की दशा में गुरु और शिष्य एक हो जाते हैं लेकिन मर्यादा में गुरु गुरु है और शिष्य शिष्य। मर्यादा में एक गुरु होता है एक शिष्य होता है। मर्यादा में गुरु चौकी पर बैठा है और शिष्य कीचड़ में खड़ा होकर उन्हें पानी दे रहा होता है लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि शिष्य छोटा है। हो सकता है कि गुरु-शिष्य दोनों की ज्ञान दशा एक समान हो। दोनों की दशा कल्याणमय हो। दोनों का मन निर्भय हो, दोनों का मन विषयासक्ति से निवृत्त हो और दोनों आत्मलीन हों। व्यवहार की दशा में दोनों में भिन्नता देखी जाती है। एक पानी दे रहा होता है और एक पानी ले रहा होता है। एक पूजा कर रहा होता है और एक पूजित हो रहा होता है। यह मर्यादा की एक स्थिति है। शिष्य का मतलब छोटा नहीं होता। शिष्य अपनी तरफ से अपने को विनम्र मानता है और विनम्र मानना भी चाहिए लेकिन शिष्य का मतलब छोटा और दीन-हीन होना नहीं होता।

कई धनी घरों में जो नौकर रखे जाते हैं लोग उनको दीन-हीन मानते हैं जो बहुत गलत है। मेरी सलाह है कि कोई नौकर रखे तो उसको वह दीन-हीन न माने किन्तु उसको आदर दे। शिष्य गुरु का नौकर नहीं होता किंतु वह गुरु का उत्तराधिकारी होता है। गुरु शिष्य को नौकर नहीं मानता, दीन-हीन नहीं मानता। शिष्य तो देवता है।

कबीर साहेब ने कहा है—"तैं सुत मान हमारी सेवा, तो कहँ राज देउँ हो देवा" ऐ देव! तू हमारी सेवा मान ले। शिष्य को यहां साहेब सुत-पुत्र कहते हैं। और "सुत से शिष श्रेष्ठ आहिं" यह साखी में आया ही है। तात्पर्य है कि सुत से-पुत्र से शिष्य श्रेष्ठ होता है।

पहले का जमाना ऐसा था कि पाठशालाओं में पुत्र और शिष्य दोनों होते थे। ऋषियों के यहां उनके पुत्र भी होते थे और शिष्य भी। वे आज की तरह केवल पंडित ही नहीं होते थे किंतु साधना सम्पन्न भी होते थे। "ब्राह्मणबंधु" यह पहले व्यंग्य शब्द था। जो ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ हो किंतु पढ़ा-लिखा न हो, अध्यात्म को न जानता हो तो कहते थे कि वह "ब्राह्मणबंधु" है। मतलब ब्राह्मण का भाई है। ऋषि लोग व्यंग्य में कहते थे कि हमारे घर में कोई ब्राह्मणबंधु नहीं रहा इसलिए तुम पढ़ने जाओ।

एक ऋषिकुमार पढ़ने जाता है। बारह वर्ष तक पढ़ता है और विद्वान होकर जब घर वापस आता है तब वह मारे अहंकार के एकदम छाती तानकर अपने पिता के सामने खड़ा होता है। तब उसके पिता उद्दालक उससे पूछते हैं कि बेटा! क्या तुम उस तत्त्व को जान गये हो जिसको जानने पर सब कुछ जाना हुआ हो जाता है।

वह पुत्र कहता है—"पिताजी, यह तो मैंने नहीं जाना।" उद्दालक ऋषि कहते हैं—"तब तुम्हारा पढ़ना किस काम का हुआ बेटा, जो मारे अहंकार के तनकर खड़े हो।" तब पुत्र कहता है—"तो भगवन्! आप ही उस तत्त्व का उपदेश दीजिए।" तब ऋषि अपने पुत्र को अध्यात्म तत्त्व का उपदेश देने लगते हैं और वह सुनते-सुनते मगन हो जाता है। वह सुनते नहीं अघाता है और आगे पूछता है कि—"और भगवन! इससे आगे भगवन!" तब ऋषि कहते हैं—सौम्य! सुन, मैं तुमको बताता हूं। ऋषि आगे उपदेश देते हैं और अंत में कहते हैं—तत्त्वमसि श्वेतकेतो।

हर उपदेश के अंत में यह वाक्य आता है—"तत्त्वमसि श्वेतकेतो"—ऐ श्वेतकेतु! वह तुम्हीं हो। जिस परमात्मा को, जिस ब्रह्म को, जिस निर्वाण और जिस परमानन्द को तू खोज रहा है वह तुम्हीं हो। उद्दालक ऋषि पिता हैं, जो श्वेतकेतु को उपदेश कर रहे हैं जो उनका शिष्य है और पुत्र भी है।

मदालसा का उदाहरण है। वह अपने बच्चे को गोदी में बैठाकर लोरी गाती है, वैराग्य सिखाती है—"शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि"—तुम शुद्ध हो, बुद्ध हो, निर्मल हो, आत्मा हो। तुम देह नहीं हो, तुम तो अविनाशी हो। इस प्रकार मदालसा अपने पुत्र को वैराग्य सिखाती है, वैराग्य कराती है।

ऐसे पिता और ऐसी माताएं हमारे यहां हुए हैं जिन्होंने अपने पुत्रों को आत्मज्ञान दिया है और ऐसे पति भी हुए हैं जिन्होंने अपनी पत्नियों को आत्मज्ञान दिया है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी मैत्रेयी को अध्यात्म का उपदेश देते हैं और कहते हैं—"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्"—ऐ मैत्रेयी! आत्मा ही जानने, सुनने, देखने और मनन करने योग्य है। तुम विषयों को देखोगी, सुनोगी और मनन करोगी तो तुम्हारा मन मलिन होगा और तुम अपनी आत्मा से भटक जाओगी। इसलिए बाहर से लौटो और अपनी आत्मा की ओर उन्मुख हो। जो आत्मा को देखता है, विषयों को नहीं देखता है, यानी प्रपंच को नहीं देखता है, राग-द्वेष को नहीं देखता है वह भय नहीं पाता है। आत्मा को देखो।

ऐसी पत्नी भी हुई हैं जिन्होंने अपने पति को अध्यात्म का उपदेश देकर उसको परम सुखी बना दिया। चुडाला ने अपने पति राजा शिखिध्वज को आत्मज्ञान दिया था। यह कहानी योगवाशिष्ठ में आती है।

भारत बड़ा अद्भुत देश है। यहां पिता पुत्र को, पुत्र पिता को, माता पुत्र को, पति पत्नी को और पत्नी पति को अध्यात्म का ज्ञान दिये हैं। हमलोगों को चाहिए कि सद्गुरु की खोज करें। सद्गुरु से आत्मज्ञान और कल्याण की बातें ग्रहण करें और जिस भवव्याधि से हम पीड़ित हैं उससे हम मुक्त हों। जीवन का परम लक्ष्य है मोक्ष। मोक्ष मर जाने के बाद की घटना नहीं है किंतु जीवनकाल में रहते-रहते की घटना है। "जियत न तरेउ मुये का तरिहो, जियतहि जो न तरे"—साहेब ने कहा है कि मरने के बाद क्या तरोगे। जीते-जीते तरो।

लोगों ने साहेब से कहा कि महाराज, जीते-जीते तरना तो बड़ा मुश्किल है। तब साहेब ने उनको समझाया और कहा—"गहि परतीत किन्ह जिन जासो, सोई तहाँ अमरे"—जो पक्का निश्चय कर लेगा वह वहां जरूर पहुंचेगा, जरूर वह मुक्त हो जायेगा। जीवन में रहते-रहते भय और अतृप्ति न रहे यही जीवन में रहते-रहते तरना है।

हम हरदम अतृप्ति में रहते हैं। हम सोचते हैं कि कल तृप्त होंगे। जो आज तृप्त न होगा वह कल क्या तृप्त होगा। जो आज आनन्दित न होगा वह मरने पर क्या आनन्दित होगा। आज ही हमें पूर्ण तृप्त और निर्भय होना है और यह आत्मबोध से ही सम्भव है। जो शरीर हर क्षण मिटता चला जा रहा है, जो प्राणी-पदार्थ हर क्षण विखरते चले जा रहे हैं, जहां पर सब कुछ सब समय परिवर्तनशील है, उन प्राणी और पदार्थों में ममता बनाकर भवव्याधि से हम मुक्त नहीं हो सकते। इन बदलती हुई वस्तुओं, पदार्थों में ममता बनाकर भवव्याधि से हम मुक्त नहीं हो सकते। इन बदलती हुई वस्तुओं और बदलते हुए प्राणी-पदार्थों में हमारी जो ममता लगी है वह यदि छूटती है और जो अविनाशी, स्थिर आत्मा है उसमें यदि वह लगती है तब हमें अक्षय सुख की प्राप्ति होती है।

वेद के ऋषि कहते हैं कि तुम 'कृत' से 'अकृत' को नहीं पा सकते। जो अविनाशी और नित्य है उसको तुम क्रियाओं और कर्मकाण्डों से नहीं पा सकते। तुम उसे भौतिक प्राणी-पदार्थों से नहीं प्राप्त कर सकते।

उसको तो तुम बोध से पाओगे। यह तब होगा जब सद्गुरु की खोज करोगे और उसके निर्देशों का पालन करोगे। इसलिए सद्गुरु की खोज करो। हमारे जीवन में जो अनेक प्रकार के गुरु हैं वे सब आदरणीय और पूजनीय हैं। लेकिन जहां पर हमारे मन की पीड़ा का अन्त होता है, जिसका बोध पाकर हम सुख से सोते और सुख से जागते हैं, जिससे निर्भयता और परमानन्द की प्राप्ति होती है ऐसे सद्गुरु के पास जाने से ही कल्याण होगा और ऐसे सद्गुरु की उपासना से और उनके बोध-विचार को ग्रहण करने से ही हमारे मानसिक रोग और भवव्याधि सब मिटेंगे।

इस गुरु पूर्णिमा के अवसर पर हम लोगों को अपने मन में यह संकल्प लेना चाहिए कि व्यावहारिक जीवन तो हम जी ही रहे हैं; खाते-पीते, सोते-जागते, जिंदगी हमारी कट ही रही है लेकिन हम आध्यात्मिक दिशा में भी गतिशील हों। जैसे खदान से निकली हुई चीजें कम कीमती होती हैं लेकिन जब उनको शोध दिया जाता है तब वे कीमती हो जाती हैं वैसे शिष्य जब गुरु द्वारा शोध दिया जाता है तब कीमती हो जाता है। "संस्कारात्द्विजोच्यते"—संस्कार हो गया तो द्विज हो गया। द्विज का अर्थ है दुबारा जन्मा हुआ। संस्कार का मतलब है मांजना, धोना, रगड़ना और साफ करना। सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा है—"गुरु सिकलीगर कीजिये, मनहिं मसकला देय। शब्द छोलना छोलिके, चित्त दर्पण करि लेय।"—शब्दरूपी छोलने से छोलकर तुम्हारे चित को दर्पण के समान स्वच्छ बना दे। ऐसा गुरु तो अपनी तरफ से करेगा लेकिन आपको भी अपनी तरफ से यह काम करना है।

आप चाकू जैसा कोई पदार्थ नहीं हैं जिसको गुरु-सिकलीगर पकड़कर रगड़ दे और आप ठीक हो जायें। आप चेतन हैं। आपके पास अपना मन है, अपनी बुद्धि है और उसमें आपने ही नाना संस्कार भर रखे हैं। आपके साक्षीत्व में नाना संस्कार आपके मन में पड़े हैं। आप जब स्वयं चाहेंगे तभी साधना करके इन संस्कारों को मिटा सकेंगे। गुरु तो अपनी तरफ से ज्ञान देगा लेकिन आपको उसको लेना पड़ेगा।

जैसे एक कमरे में कोई बन्द हो और अन्दर से उसने कुण्डी लगा ली हो। बाहर से भी उस कमरे में कुण्डी लगा दी गयी हो। बाहर से कोई व्यक्ति आयेगा तो वह बाहर की ही कुण्डी खोलेगा। भीतर की कुण्डी वह कैसे खोल पायेगा। भीतर की कुण्डी तो वह आदमी आप ही बन्द किये बैठा है, इसलिए अन्दर की कुण्डी को उसे ही खोलना होगा। बाहरवाले ने बाहर की कुण्डी को खोल दिया लेकिन भीतरवाला जब तक भीतर की कुण्डी न खोले तब तक कैसे वह बाहर आ पायेगा। इसी प्रकार गुरु की बात है। उसने बाहर का ताला तो खोल दिया लेकिन आपही भीतर का ताला नहीं खोल रहे हो तब गुरु क्या करेगा। आप चेतन हैं, लोटा की तरह जड़ नहीं हैं कि वह आपको उठाये और बाहर-भीतर मांज दे। सद्गुरु अपने पवित्र आचरण और वाणियों से केवल निर्देश कर सकता है, आपको केवल प्रेरित कर सकता है। आपको स्वयं उठकर खड़ा होना पड़ेगा। इसीलिए ऋषि कहते हैं—"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।" उठो, जागो और सद्गुरु की शरण में जाकर उनसे बोध प्राप्त करो। ऐसा सुन्दर मानव जीवन मिला हुआ है। इसी में यह काम हो सकता है। पशु-पक्षी और कीड़े-मकोड़े की खानियों में यह शुभ अवसर नहीं है।

हम लोग सौभाग्यशाली हैं। हमें चाहिए कि हम सद्गुरु की शरण लें, बोध प्राप्त करें और इसी जीवन में परम शांति, मोक्ष का अनुभव करें। और जो आज है वही कल है। आत्मा मरती नहीं है। जड़ भी नहीं मरता है। यहां कुछ भी मरता नहीं है किंतु केवल परिवर्तन होता है। आज हम अगर बंधन में हैं तो आगे भी बंधन में रहेंगे। आज मुक्त हैं तो आगे भी मुक्त रहेंगे। एक दुष्ट आदमी और एक सज्जन आदमी दोनों एक साथ सोयें तो जब वे जगेंगे तब जो दुष्ट होगा वह दुष्टता करेगा और जो सज्जन होगा वह सज्जनता करेगा।

मर जाना कोई अद्भुत घटना नहीं है। मोक्ष आज भी है और आगे भी। बन्धन आज भी है और आगे भी

है। अगर हम अपने को घोटाले में डाले हैं तो आगे भी घोटाले में रहेंगे और आज अगर ठीक हैं तो आगे भी ठीक रहेंगे। इसलिए मोक्ष केवल इसी जीवन में नहीं है किंतु आगे भी है क्योंकि आत्मा नित्य है और आज अगर उसने मोक्ष नहीं लिया तो आगे भी भटकना है। मोक्ष का व्यावहारिक स्वरूप है जीवन्मुक्ति। आज ही परमशांति और सुखी होना मोक्ष का असली स्वरूप है।

मोक्ष का जो व्यावहारिक स्वरूप है वह आज का है और वह है उद्वेगरहित, लालसारहित, उमंगरहित जीवन। उसका दूसरा पक्ष भी है। जीवन में लालसा और उमंग की भी आवश्यकता है लेकिन एक ऐसी अवस्था आ जाती है जहां सारी उमंग, सारी लालसा, सारी कामना, सारा उद्वेग समाप्त हो जाता है और वह अवस्था बहुत उच्च है। वहां सारे दुखों का अन्त है और वही मोक्ष है। इसी जीवन में चित्त की हलचल खत्म हो जाये यही मोक्ष है और जीवन के आखीरी समय में हमारी परीक्षा होगी। आजकल में वह दिन आ जायेगा। हम दूसरों को देखते हैं। हमारी भी एक दिन वही स्थिति होगी जिसको दूसरे लोग देखेंगे।

कबीर साहेब ने कहा है—

हाड़ जरै लकड़ी जरै, जरै जरावनहार।
कौतुकहारा भी जरै, कासों करों पुकार॥

यह कथन बड़ा मार्मिक है। जब किसी आदमी को जलाया जाता है तो शरीर में जो सबसे पुष्ट चीज हड्डी है वह जलती है लेकिन जो लकड़ी हड्डी को जलाती है, वह लकड़ी भी जलती है। जो उसको अग्निदान करता है वह भी एक दिन जलता है और वहां तमाशा देखनेवाले गये रहते हैं वे सब भी एक दिन जलते हैं। फिर किससे पुकारूं कि इससे बचाओ। इस मृत्यु से कौन बचाये! यह तो होना है। यह परम सत्य है।

पलटू साहेब ने कहा है—"देखत सोना लगे सकल जग काँच है। अरे हां पलटू जीवन कहिये झूठ तो मरना साँच है"—इस वास्तविकता को हमें समझना चाहिए। यह वास्तविकता जितनी समझी जायेगी निश्चित है कि हमसे पाप नहीं होगा, उद्वेग नहीं होगा और अशांति नहीं होगी। तब हमारा जीवन बड़ा सुखद होगा, बड़ा आनन्दमय और कल्याणमय होगा लेकिन हमारी बुद्धि ही सही नहीं है। हम विपरीत दिशा में भटकते हैं।

जिस गुरुपूर्णिमा को आज हमलोग मना रहे हैं यह आध्यात्मिक गुरु से जुड़ा है। आध्यात्मिक गुरु हमारे मन की चिकित्सा करता है। शर्त यह है कि उसने अपने मन की चिकित्सा कर ली हो, वह दुखरहित हो गया हो। उसका मन उद्वेगरहित हो, विकाररहित हो, मुक्त आत्मा हो तब फिर वह हमारी भी चिकित्सा करे। ऐसे गुरु के पास हमें जाना होगा। ऐसे गुरु से हमें जीवन का अंतिम लक्ष्य प्राप्त होगा और अंतिम रिजल्ट तो अंतिम दिन है। उस दिन हम पास होते हैं कि नहीं यह बताने का अवसर ही नहीं रहेगा।

हमारा शरीर जब छूटने लगे तो हमारा मन बीवी-बच्चों में न जाये, धन-दौलत में न जाये, मकान-दुकान में न जाये, बैंक-बैलेंस में न जाये। कहीं भी वह बाहर न जाये, मान-बड़ाई में न जाये, पद-प्रतिष्ठा में न जाये किंतु आत्मस्थ हो जाये, आत्मलीन हो जाये तो यह हमारी सच्ची सफलता होगी। उद्वेग और खिंचाव न हो बल्कि हम अंतिम समय में एकदम प्रशांत रहें तब समझो कि जीवन का अंतिम रिजल्ट सफल है। तब हम उत्तीर्ण हुए।

घोर आंगिरस ने महाराज श्रीकृष्ण को जो उपदेश दिया था उसका हमें भी मनन-चिंतन करना चाहिए। महाराज श्रीकृष्ण के तीन गुरु थे। उनके कुलगुरु गर्गाचार्य थे, शिक्षा गुरु सांदीपनि थे और आध्यात्मिक गुरु महर्षि घोर आंगिरस थे। घोर आंगिरस ने उनको जीवनयज्ञ की शिक्षा दी थी। छांदोग्योपनिषद् में यह बात आती है कि यह जीवन ही यज्ञ है और अंत में उन्होंने तीन बातें कही थीं—"अन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसंशितमसीति"—ऐ कृष्ण! अंतिम बेला के लिए मैं तुम्हें तीन उपदेश करता हूं। तुम इनको याद रखना कि मैं अविनाशी हूं, मैं निर्विकार हूं, और मैं प्राण से भी सूक्ष्म हूं।

इसलिए देहाभिमान को तुम बिलकुल अलग कर दो और सोच लो कि मैं देह नहीं हूं। विवेकी देह के सुख-दुख से निर्विकार होकर रहता है। उसे निश्चय रहता है कि शरीर गलता है, मैं नहीं गलता हूं। शरीर छुटेगा लेकिन मेरी अपनी आत्मा नहीं छुटेगी। मेरा अपना अस्तित्व अलग नहीं हो सकता है। आत्मा का अस्तित्व ही परमात्मा का अस्तित्व है। मेरा परमात्मा मुझसे अलग नहीं हो सकता। मेरा राम मुझसे अलग नहीं हो सकता। राम और परमात्मा आत्म अस्तित्व ही है। महाराज श्रीकृष्ण के जीवन की अंतिम बेला के लिए उनके गुरु का यह उपदेश था। इस ओर हमें भी ध्यान देना चाहिए।

मैं कह रहा था कि गुरु हमारे मन की चिकित्सा करता है और हमारे जीवन में इसकी महती आवश्यकता है कि भवव्याधि की निवृत्ति होनी चाहिए। खाने-पीने की चीजें तो सबको मिल जाती हैं लेकिन जो मन दुखी रहता है वही सोचनीय बात है। श्री विशाल साहेब ने कहा है—

खान पान सुख भोग जो, मिलत भाग्य ते जान।
तृष्णा शोक कुकर्म बढ़ी, बिन बोध अभाग्यहिं जान॥

खान-पान, सुख-भोग ये प्रारब्ध से मिल जाते हैं लेकिन हमारा दुर्भाग्य यह है कि हम तृष्णा, शोक, कुकर्म में डूबते रहते हैं।

जीवन गुजर तो सबका हो जाता है लेकिन मन की तृप्ति, मन की शांति, मन का आनन्द तो मन के स्वस्थ होने में ही होगा और गुरु की शरण में ही यह सब सम्भव है। गुरु की शरण के अलावा यह कहीं भी सम्भव नहीं है। और कहीं आधार नहीं है। इसलिए हर इंसान को चाहिए कि सद्गुरु की शरण में जाये और फिर दरजे-दरजे जो अनेक गुरु हैं वे सब भी वन्दनीय हैं। उनका भी आदर होना चाहिए।

सद्गुरु वही है जिसका मन निर्मल है जो निर्द्वन्द्व है, संतुष्ट है, आत्मलीन है ऐसे गुरु हमारे जीवन को शोध देते हैं। अगर हम अपने को उन्हें समर्पित कर दें तो वे इसको शोध कर दोषरहित कर देते हैं और हम सुखी हो जाते हैं। इसलिए गुरु की महिमा अनन्त है—

सद्गुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनत उघाड़िया, अनंत दिखावनहार॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि गुरु की महिमा अनंत है। उनकी कृपा भी अनन्त है। वह अनन्त लोचन उघाड़ने वाला है और अनन्त लाभ देने वाला है। आध्यात्मिक लाभ अनन्त लाभ है। बाहरी लाभ तो सब अविवेकपूर्ण है। वह मिला और छुटा, मिला और छुटा लेकिन आध्यात्मिक लाभ अनन्त है। पदार्थजनित सुख क्षणिक है। वह आया और गया लेकिन आत्मजनित सुख स्थायी है। गुरु आत्मजनित बोध ही देता है और आत्मजनित सुख देता है जो अनन्त होता है। इसलिए जो सद्गुरु हैं वे सभी गुरुओं में सिरमौर हैं। जहां पर हमारे मन की व्याधि मिटती है। ऐसे सद्गुरु की शरण में जाना चाहिए और जीवनभर विनम्रतापूर्वक वहां से प्रेरणा लेना चाहिए।

मानवजीवन का परम फल है परमशांति की प्राप्ति और वह परम शांतात्मा सद्गुरु की शरण में ही सम्भव है। अगर हमें व्याकरण पढ़ना है तो व्याकरण के विद्वान के पास जाना होगा। संगीत पढ़ना है तो हमें संगीत के विद्वान के पास जाना होगा क्योंकि अपने-अपने विषय का ही तो कोई ज्ञान देगा। जो पूर्ण संतपुरुष हैं, शांतात्मा पुरुष हैं उनकी शरण में ही जिज्ञासु का कल्याण है। इसलिए गुरु की महिमा अनन्त है और सद्गुरु कबीर ने तो यहां तक कहा है कि—"सब धरती कागद करौं, लेखनी सब बनराय। सब समुद्र को मसि करौं, गुरु गुन लिखा न जाय।" यह गुरु की महिमा की अतिशयोक्ति है। इसका मतलब यही है कि लिखन्त-पढ़न्त करनेवाले लोग लिखा-पढ़ा करें किन्तु लिखने-पढ़ने में वह चीज नहीं आती है।

गुरु का जो ज्ञान है वह लिखने-पढ़ने के बाहर है। यद्यपि पुस्तकों से भी उपदेश मिलता है, प्रेरणा मिलती

है लेकिन सब बोध केवल पुस्तकों से ही मिल जाये यह सम्भव नहीं है। गुरु की जरूरत है। जब वह बोध देता है, निर्देश करता है और हम साधना करते हैं, उसके निर्देशानुसार जब हमारी साधना होती है और धीरे-धीरे जब उसका निर्देश और अपना अनुभव मिल जाता है तब वह सच्चा होता है। पुस्तक में वह बात नहीं आ सकती। इसलिए पुस्तक से कोई उस तत्त्व को पाना चाहे तो नहीं पा सकता।

एक सज्जन ने मुझसे कहा था कि महाराज, मैं केवल प्रवचन सुन लिया करूं, किताबें पढ़ लिया करूं तो क्या काम नहीं बनेगा? मैंने उनसे कहा कि हो जायेगा। तुम करो तो! तुम करते रहो फिर जो होना होगा वह हो जायेगा। मेरा यह एक हल्का व्यंग्य था। वे इसको समझे और महसूस किये। खास बात है कि कहीं सिर झुकाने का मन नहीं होता है। कहीं अनुशासन में रहने का मन नहीं होता है, मन होता है कि ऐसे ही अकड़कर सब मिल जाये लेकिन आप लोग यह जान लें कि अकड़कर कुछ मिलता नहीं। कबीर साहेब ने कहा ही है—

सबते लघुता भली, लघुता से सब होय।
जस दुतिया को चन्द्रमा, शीश नावैं सब कोय॥

लघुता ही सबसे अच्छी होती है। लघुता से ही सब होता है। दुतिया के चन्द्रमा को देखो वह कितना झुका हुआ होता है लेकिन वह कितना वन्दनीय होता है। वह क्यों वन्दनीय होता है क्योंकि रोज-रोज वह चमकता जाता है। दिन जितने बढ़ते जाते हैं उतना ही वह चमकता चला जाता है। पूर्णमासी का चन्द्रमा पूर्ण तो होता है लेकिन दूसरे ही दिन से घिसना शुरू होता है, काला होना शुरू हो जाता है।

पूर्णमासी के चन्द्रमा का अपना महत्त्व है और दुतिया के चन्द्रमा का अपना महत्त्व है। यह तो प्रकृति की घटना है लेकिन कवि लोग सब कुछ को अपने ढंग से ढालकर उपदेश करते हैं। इसलिए उसमें भी कोई विरोध नहीं है।

पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान गुरु पूर्ण प्रकाशस्वरूप है। सूरज के प्रकाश में तो गरमी रहती है और वह अनसुहाता लगता है लेकिन पूर्णमासी के चन्द्रमा का जो प्रकाश है वह मनोहर है, मधुर है, कितना स्निग्ध और कितना अच्छा लगता है। इसलिए गुरु पूर्णिमा के समान हैं, शुद्ध-बुद्ध हैं, निर्मल हैं, जिसका ज्ञान-प्रकाश हमें स्निग्धता और प्रकाश देता है, शीतलता भी देता है। ऐसे सद्गुरु के प्रकाश को प्राप्त करने के लिए यह गुरुपूर्णिमा एक प्रतीक के रूप में है। हम लोगों को चाहिए कि हम अपने जीवन के कल्याण के लिए सद्गुरु की शरण में जायें, उनकी शरण में उठें-बैठें और उनसे विनम्रतापूर्वक प्रेरणा लें।

संत और सद्गुरु में कोई भेद नहीं है। संत ही सद्गुरु हैं और सद्गुरु ही संत हैं। संत वह है जिसने हमें दीक्षा नहीं दी है, जिसके द्वारा हम सीधे नहीं जुड़े हैं। सद्गुरु वह है जिससे हम सीधे जुड़े हैं लेकिन जो हमारे लिए सद्गुरु हैं वही किसी के लिए संत हैं और जो किसी के लिए संत हैं वही किसी के लिए सद्गुरु हैं। इसलिए संत और सद्गुरु में कोई भेद नहीं है। संत के पास बैठें, सद्गुरु के पास बैठें उनसे आध्यात्मिक प्रेरणा लें और यह समझें कि सच्ची शांति, जीवन का सच्चा सुख गुरु के सत्संग और बोध में ही सम्भव है।

गुरुपूर्णिमा पूरे भारतवर्ष के लोगों के लिए महान पर्व है। इस पर्व के दिन हम सबको संकल्प लेना चाहिए क्योंकि संकल्प में बड़ी शक्ति है। कोई गंदी आदत हो उसको छोड़ने के लिए संकल्प लें कि अब ऐसी गंदी आदतों में नहीं पड़ूंगा और उसका परित्याग करें। गुरु के सामने अपनी गलती चढ़ानी चाहिए। गलती सब चढ़ा दें और अच्छाई ले लें बस यही गुरुपूर्णिमा मनाने का फल है। इसी के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूं और आप सबके प्रति यह शुभ कामना करता हूं कि आप सब लोग गुरु के मार्ग में अग्रसर होकर जीवन को सुखमय बनायें।

❑

आदर्श जीवन

नयी युक्ति

आचार्य विनोबा भावे के आश्रम में एक लड़का रहता था। उसको बीड़ी पीने की लत पड़ गयी थी। आश्रम में बीड़ी, तम्बाकू, दुर्व्यसन की कोई चीज खा-पी नहीं सकते, इस नियम की उसे जानकारी थी। फिर भी वह चुपचाप बीड़ी पीता रहता था।

एक दिन एक आश्रमवासी ने उस लड़के को छिपकर बीड़ी पीते हुए देख लिया। वह लड़का घबरा गया। विनोबा भावे के पास उसकी शिकायत पहुंची। विनोबा भावे ने उस लड़के को बुलाकर कहा—"बेटा, घबराना नहीं। बड़े-बड़े लोग भी बीड़ी पीते हैं। तुमने गलती यह की है कि चोरी-छिपे पी है। अब मैं तुम्हें एक अलग कोठरी देता हूं और बीड़ी का एक बंडल मंगा देता हूं। जब भी बीड़ी पीने की इच्छा हो तो मुझसे मांगकर उस कोठरी में जाकर बीड़ी पी लिया करो।"

आश्रमवासियों को यह बात विचित्र लगी। लोग कहने लगे कि उसकी बीड़ी छुड़ाने की बात तो दूर रही, ऊपर से उसको बीड़ी पिलाने की व्यवस्था कर रहे हैं। दो-चार दिनों में ही उस लड़के की बीड़ी पीने की आदत छूट गयी और एक अच्छा इंसान बन गया। आज भी विनोबा जी के आश्रम के डे बुक (बही) में बीड़ी के बण्डल का खर्च और विवरण लिखा हुआ मिलता है।

समय का दुरुपयोग कब होता है?

आचार्य विनोबा के असली दांत टूट चुके थे, नकली दांत लगाये थे। रोज अपने हाथों से दांतों को निकालकर धोते थे। उसमें पंद्रह मिनट सहज ही लग जाता था। एक बार जानकी देवी ने विनोबा से कहा—"आपके मूल्यवान पंद्रह मिनट दांत धोने में लगते हैं। यह ठीक नहीं है! किसी दूसरे को यह काम क्यों नहीं सौंप देते? नाहक समय का दुरुपयोग होता है।"

विनोबा ने कहा—हाथ-पैर से कोई काम करने में समय का दुरुपयोग नहीं होता है। समय का दुरुपयोग तो जिन क्षणों में हमारे मन में काम-क्रोधादि विकार पैदा हों, उसमें है। उस वक्त समझ लो कि उतना समय व्यर्थ गया। बाकी शुद्ध मन से कोई भी काम करने में समय व्यर्थ नहीं जाता।

कितना नुकसान सहें?

एक बार विनोबा जी रेलगाड़ी से सफर कर रहे थे। सूत कातने का समय हुआ तो चरखा खोलकर बैठ गये। परन्तु चलती रेलगाड़ी में धक्के लगने से तार बार-बार टूट जाते थे। टूटे हुए तार को जोड़ना पड़ता था। नजदीक एक कृषि स्नातक व्यक्ति बैठा हुआ था, उससे रहा नहीं गया। उसने कहा—टूटे हुए तार जोड़ने में आप जितना समय खर्च करते हैं, उतने समय में आप ज्यादा सूत नहीं कात सकेंगे?

विनोबा ने कहा—कात तो जरूर सकता हूं, परन्तु टूटा हुआ धागा निकम्मा फेंक देना ठीक नहीं है। उस व्यक्ति ने कहा—हर काम में थोड़ा-बहुत नुकसान तो होगा ही न? विनोबा ने कहा—आप सौ में से कितना फीसदी नुकसान सहन कर लेंगे? उसने कहा—सौ में पांच फीसदी। विनोबा कहने लगे—तब तो आपका अनर्थ ही हो गया। आप अपने जीवन के बीसवें हिस्से के समय को ऐसे ही खो देने के लिए तैयार हैं। देश में खेती योग्य जितनी जमीन हैं उसमें से पांच फीसदी छोड़ देने को राजी हैं! देश की चालीस करोड़ जनता में से पांच फीसदी यानी दो करोड़ मनुष्य मर जाये तो आपके हिसाब से कोई हर्ज नहीं है?

भाई, इस तरह विचार करना ठीक नहीं है। हमारा तो प्रयत्न होना चाहिए कि थोड़ा भी नुकसान न हो।

—रमेशदास